जातक कथाएँ

(सचित्र)

लेखक

श्री चन्द्रिकाप्रसाद मिश्र

प्रकाशक

साहित्य प्रकाशन मन्दिर

हाईकोर्ट रोड, ग्वालियर

प्रकाशक
साहित्य प्रकाशन मन्दिर,
हाईकोर्ट रोड, लश्कर, ग्वालियर

मूल्य दो रुपये

जातकानुक्रम

प्रस्तावना

जातक का अर्थ है जन्म-वृत्तांत। मूल जातक में ५५० कथाएँ संग्र-
ृ है जिनमें से प्रत्येक उनके किसी पूर्व जन्म से सम्बन्धित हैं। इन
ाओं में कुछ में पुनरुक्ति भी है अर्थात् एक ही कथा एक से अधिक
र भी कही गई है। इस छोटी-सी पुस्तिका में सभी कथाओं को दे
ना तो सम्भव न था और उनमें से क्या लेना और क्या छोड़ना यह
ाम भी सरल न था। फिर भी मैंने इस कठिन कार्य को करने का
ाहस किया है और चुनी हुई २५ कथाओं को लेकर पाठकों के सम्मुख
पस्थित हो रहा हूँ।

कथाओं का रूप मैंने मूल के अनुसार ही रखा है परन्तु भाषा मेरी
अपनी है। प्रत्येक कथा तीन भागों में विभक्त है :—

(१) गाथा : कथा के आरम्भ में एक पद्य होता है जो उस कथा को सार रूप में पाठक के सामने रख देता है अथवा उसका संदर्भ देता है। कुछ कथाओं के अन्तर्गत कई गाथाएँ और भी आ जाती हैं। मूल गाथाएँ पाली में हैं जो साधारण पाठकों के लिये दुर्बोध ही होतीं अतएव मैंने केवल उनका हिन्दी भाषान्तर मात्र ही देकर संतोष किया है।

(२) **वर्तमान कथा :** प्राय: इसका सम्बन्ध भगवान बुद्ध के समय की किसी घटना विशेष से होता है जिसकी चर्चा बिहार में भिक्षु समुदाय में होती है और जिसके आधार पर भगवान पूर्व जन्म का वृत्तांत सुनाते हैं। इन घटनाओं में हमें तत्कालीन राजपरिवारों, प्रतिष्ठित व्यक्तियों, भिक्षुओं, बुद्धभक्तों तथा साधारण जनों का उल्लेख समान रूप से मिलता है।

(३) **अतीत कथा :** वास्तविक जन्म कथा होती है जिसमें वर्तमा कथा की किसी बात की पुष्टि भगवान अपने पूर्व जन्मों के वृत्तां से करते हैं। प्रत्येक कथा के अन्त में तथागत अपने पूर्व जन्म व कथा का वर्तमान कथा से सामंजस्य स्थापित करते हैं अर्थात् य स्पष्ट करते हैं कि आज के कौन-कौन से व्यक्ति पूर्व जन्म किस-किस रूप में थे।

जातक कथाओं का वास्तविक लेखक कौन है, यह कह सकना कठि है। ऐसा प्रतीत होता है कि भगवान बुद्ध के परिनिर्वाण के ५०० व के भीतर ये कथाएँ लिखी गई हैं। लेखक का उद्देश्य जन साधारण भगवान के उपदेशों का प्रचार करना है। भगवान बुद्ध के प्रति जनत की श्रद्धा का लाभ उठाने के उद्देश्य से उन्हीं के श्रीमुख से कथाओं का वर्णन कराया गया है। पुराणकारों ने भी देवताओं के नाम पर ग्रंथ की रचना की है। गोस्वामी तुलसीदास ने रामायण की कथा भगवान शंकर के मुख से कहलाई है।

कथा वस्तु :

बहुत-से विद्वानों का मत है कि इन कथाओं में से बहुत-सी किसी न किसी रूप में भगवान बुद्ध के पूर्व से ही मौजूद थीं। यदि लिखित रूप में नहीं तो लोक कथाओं अथवा जनश्रुतियों के रूप में इनका अस्तित्व अवश्य था। इन्हीं कथाओं के आधार पर कुछ हेर-फेर के साथ जातक-कथाओं की रचना की गई है। कुछ कथाएँ हिन्दू पुराणों में भी पाई जाती हैं यद्यपि उनका रूप कुछ भिन्न है। जातक की रचना संभवतः पुराणों के वर्तमान रूप से भी पहले हो चुकी थी। उस समय कथा साहित्य में किसी अन्य ग्रंथ का होना भी पाया नहीं जाता। बृहत्कथा तथा कथासरित्सागर आदि ग्रन्थ बहुत बाद में लिखे गए। वाल्मीकि की रामायण भी उस समय नहीं बनी थी। दशरथ जातक की कथा में

दशरथ को काशी का राजा कहना, उनकी केवल दो पटरानियों का उल्लेख, कौशल्या की मृत्यु, भरत और लक्ष्मण का भाई होना, शत्रुघ्न का उल्लेख न होना तथा सीता को राम की बहन लिखना यह सिद्ध करता है कि रामायण से पूर्व लोक कथाओं में राम की कहानी कुछ भिन्न रूप में ही प्रचलित थी और जातक में उसे बदलने की चेष्टा नहीं की गई है। शिवि की कथा भी पुराणों से कुछ भिन्नता रखती है। पुराणों में गजराज और ग्राह की कथा मिलती है जो यहाँ कर्कट और गजराज की कथा के रूप में दिखाई देती है। सब देशों की लोक कथाओं में समान रूप से पाई जाने वाली, भूत, प्रेत, यक्षादि की कहानियाँ भी इनमें मिलती हैं। इन्द्र और ब्रह्मा का देव रूप में उल्लेख जातक में मिलता है।

उपदेश :

कथाओं का मुख्य उद्देश्य त्याग, वैराग्य, मन, वचन और कर्म की पवित्रता, अहिंसा, लोकहित तथा बुद्धि द्वारा निर्द्धारित कर्ममार्ग की महत्ता स्थापित करना तथा भगवान द्वारा प्रचारित पंचशील और दश-शील की ओर लोगों को अधिकाधिक आकर्षित करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति में ये कथाएँ बहुत सफल रही हैं। बौद्ध धर्म में ईश्वर के विषय में कुछ नहीं कहा गया। आचरण की पवित्रता ही द्वारा निर्वाण सम्भव माना गया है। इसीलिये इन कथाओं का रूप पुराणों की कथाओं से भिन्न होना अनिवार्य है। जहाँ पुराण ईश्वर की कृपा पर बल देता है वहाँ जातक की प्रत्येक कथा में वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति से ही कल्याण मार्ग का प्रशस्त होना सिद्ध किया है।

इन कथाओं में भगवान बुद्ध के दो नाम विशेष अर्थों में प्रयुक्त हुए हैं। बोधिसत्व का अर्थ है बुद्धपद की प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील। प्रथम बुद्ध श्री दीपंकर के समय से ही भगवान बुद्ध की साधना आरंभ होगई थी।

तब से बुद्धत्व प्राप्ति के लिये उन्होंने लाखों बर्ष में अनेक जन्म ग्रहण किये और अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिये एक-एक क्षण का सदुपयोग किया। इसीलिये गौतम बुद्ध के रूप में बुद्धत्व पाने से पूर्व जन्म-बृत्तांतों में सर्वत्र उन्हें 'बोधिसत्व' ही कहा गया है।

बोध हो जाने पर लोग उन्हें श्रद्धापूर्वक अनेक नामों से सम्बोधित करते थे परन्तु जो नाम उन्हें सब से प्रिय था वह था 'तथागत' जिसका अर्थ है उसी मार्ग पर चलकर मंजिल पर पहुँचने वाला। इस प्रकार दोनों ही नाम भगवान बुद्ध की कठोर यात्रा की याद दिलाते हैं—एक साधना काल की और दूसरा फल प्राप्ति के बाद की।

तत्कालीन इतिहास तथा भूगोल :

(१) **कपिल वस्तु :** भगवान बुद्ध का जन्म नेपाल राज्यंतरगत कपिलवस्तु नामक स्थान में हुआ था। उस समय हिमालय की तराई में यह राज्य महत्वपूर्ण था। बोध प्राप्त होने पर भगवान एक बार फिर भी कपिलवस्तु गए थे और अपने परिवार को दीक्षित किया था। जातक कथाओं में से कई यहाँ कही गई थीं।

(२) **श्रावस्ती :** कोशल नरेश महाराज प्रसेनजित् की राजधानी थी। इस नगर के बहुत से लोग भगवान के प्रति श्रद्धा रखते थे जिसमें अनाथ पिंडक नामक एक धनी सेठ भी था। इसी सेठ ने जेतवन का विशाल बिहार बनवाया था। जेतवन में बहुत-सी जातक कथाएँ कही गई थीं।

(३) **काशी :** काशी का उल्लेख जातकों में बहुत आया है। बहुत-सी कथाओं में काशी का राजा ब्रह्मदत्त ही बताया गया है परन्तु एक राजा का इतने दिनों तक जीवित रहना सम्भव नहीं है। एक कथा से ऐसा भी पता चलता है कि ब्रह्मदत्त नाम राज्यासन

पर बैठने वाले प्रत्येक व्यक्ति का होता था। इसी प्रकार बोधिसत्व स्वयम् भी ब्रह्मदत्त बन गए थे।

(४) राजगृह : मगध राज्य के अंतर्गत यहाँ भी प्रसिद्ध बिहार था। मगध का राजा अजातशत्रु आरम्भ में अत्यंत क्रूर स्वभाव था यहाँ तक कि अपने पिता की भी उसने हत्या कर डाली थी। परन्तु बाद को उसे अपने कर्मों पर पश्चात्ताप हुआ। जेतवन के समान आम्रवन तथा वेणुवन नामक बिहार यहाँ प्रसिद्ध थे।

बुद्ध विरोधी लोग

भगवान बुद्ध का प्रसिद्ध विरोधी भाई और शिष्य देवदत्त मगध की राजधानी पाटलीपुत्र में ही एक शानदार भवन में रहता था। उसने आरम्भ में बुद्ध को नीचा दिखाने के लिये बड़े ऊँचे-ऊँचे सिद्धांतों की घोषणा की जिन पर आचरण कर सकना संभव न हो सका। अंत में राजा की कृपा से अपने संघ के ५०० भिक्षुओं की व्यवस्था करके वह भिक्षु जगत में बदनाम होगया। राजा के पिता की हत्या की सलाह भी, लोगों को संदेह था, देवदत्त ने ही दी होगी। अकस्मात एक गहरे गड्ढे में गिरने से देवदत्त की मृत्यु होगई।

पुराण काश्यप, मक्खलि घोषाल आदि अनेक वैदिक विद्वान जन्म भर बुद्ध का विरोध करते रहे। परंतु राजाओं पर तथागत का पूरा प्रभाव होने के कारण वे कुछ हानि न पहुँचा सके।

जातक अपने ढंग की प्रथम पुस्तक है। उसमें हमें इतिहास, कविता, कहानी, धर्म आदि सभी विषयों का सुन्दर समन्वय मिलता है।

मैंने प्रयत्न किया है कि विषय को रोचक बनाने के साथ-साथ भाषा यथाशक्ति सरल ही रहे। अपने उद्देश्य में कहाँ तक सफल हुआ हूँ इसका निर्णय तो पाठकगण ही करेंगे

ग्वालियर } चन्द्रिका प्रसाद मिश्र

१

निग्रोधमिग जातक

गाथा

[केवल निग्रोध मृग के ही साथ रहना, और शाखा-मृग का साथ मत करना। निग्रोध मृग के साथ रहकर, हे पुत्र ! मरना भी श्रेयस्कर है, परन्तु शाखा-मृग के साथ दीर्घ जीवन भी वांछनीय नहीं है।]

वर्तमान कथा

राजगृह के एक धनी सेठ की कन्या परम धर्मनिष्ठ तथा पवित्राचरण वाली थी। आयु के साथ-साथ ही अर्हत पद प्राप्त करने की उसकी इच्छा भी प्रबल हुई। आत्मज्ञान होने पर उसमें त्याग की भावना जागृत हुई। उसने एक दिन अपने माता-पिता से कहा, "मेरा मन सांसारिक सुखों से विरत हो रहा है। मैं भगवान बुद्ध से दीक्षा लेना चाहती हूँ।"

माता-पिता कन्या के प्रस्ताव को सुनकर चौंक पड़े। उन्होंने कहा, "हमारा एक धनी और प्रतिष्ठित परिवार है। तू ही हमारी एकमात्र संतान है। हम तुझे इस कार्य की अनुमति देने में असमर्थ हैं।"

जब बार-बार प्रयत्न करने पर भी वह अपने माता-पिता की अनुमति न पा सकी तो उसने सोचा कि विवाह के

उपरान्त दूसरे परिवार में जाकर में अपने पति की अनुमति से दीक्षा लूंगी।

इस प्रकार कन्या का विवाह बड़ी धूमधाम से सम्पन्न होगया। अपने नए घर में जाकर वह कन्या परम पतिपरायणा, सती और दयावती नारी सिद्ध हुई। एक बार नगर में बहुत बड़ा उत्सव था। सारे नगर में सजावट और धूम-धाम दिखाई देती थी, परन्तु सेठ की पत्नी ने उस दिन कोई शृंगार नहीं किया। नित्य की भांति साधारण वस्त्र पहने तथा बिना अलंकारों के वह घर का काम-काज कर रही थी। सेठ ने आश्चर्य भाव से पूछा "अरे यह क्या? आज भी तुम इसी वेष में रहोगी क्या? शृंगार क्यों नहीं किया?"

सती ने उत्तर दिया, "इस मलयुक्त नश्वर शरीर के शृंगार से क्या लाभ? जरा और मृत्यु का ग्रास यह शरीर क्या शृंगार करनेयोग्य है? श्मशान की धरोहर, वासनाओं का क्रीड़ास्थल, रोगों का आवास और कर्मों का संचित कोष-मात्र ही तो है यह शरीर। भीतर से मल युक्त होने से यह बाहर भी मलों का ही प्रसार करता है। इसका शृंगार एक मलपात्र के शृंगार के समान है।"

पति को यह उपदेश कुछ अच्छा न लगा। उसने कहा, "यदि तुम इस शरीर को इतना पापमय समझती हो तो भिक्षुणी क्यों नहीं हो जातीं?"

पत्नी ने सहज भाव से उत्तर दिया, "यदि मुझे स्वीकार कर लिया जाय तो मैं आज ही व्रत लेने को तयार हूँ।"

पत्नी की अत्यधिक रुचि देखकर सेठ उसे विहार में लेगया और वहाँ बहुत-सा दान देकर उसे भिक्षुणी के व्रत में दीक्षित करा दिया। इस प्रकार भिक्षुणी हो जाने पर उसे देवदत्त के आश्रम में अन्य भिक्षुणियों के साथ रखने की व्यवस्था कर दी गई।

संयोग से जिस समय सेठ की पत्नी आश्रम में आई उस समय उसे गर्भ था परन्तु इसका उसे ज्ञान न था। धीरे-धीरे गर्भ के लक्षण प्रत्यक्ष होने लगे। भिक्षुणियों में इससे बड़ी चिन्ता फैल गई और उन्होंने देवदत्त से इसकी चर्चा की। देवदत्त ने बदनामी के डर से उसे आश्रम से निकाल देने का आदेश दे दिया। परन्तु वह नई भिक्षुणी दृढ़ संकल्प और साहसवाली थी उसने अपनी संगिनियों से कहा, "मैंने दीक्षा तथागत से ली है। देवदत्त तो बुद्ध नहीं है। मुझे दीक्षा बड़ी कठिनता से प्राप्त हुई है, तुम मुझे उससे वंचित मत करो और मुझे तुरन्त तथागत के समीप ले चलो।"

जब भिक्षुणियों का दल जेतवन पहुँचा और तथागत के समक्ष सारा वृत्तान्त रखा तो उन्होंने उपालि से कहा, "इस विषय का निर्णय एक सभा में होना उचित है। आशा है तुम सब व्यवस्था ठीक-ठीक कर लोगे।"

दूसरे दिन कोशलनरेश प्रसेनजित, अनाथपिंडक, विशाखा तथा कोशल के अनेक भक्तगण जेतवन के विहार में उपस्थित हुए। उपालि ने विशाखा को इस विषय की जाँच करने का कार्य सौंपा कि गर्भ दीक्षा लेने से पूर्व का है या उसके बाद

का। विशाखा ने भिक्षुणी को एकांत में ले जाकर उससे बात की तथा उसकी परीक्षा करके यह घोषणा की कि गर्भ दीक्षा से पूर्व का है। इस प्रकार वह भिक्षुणी निर्दोष मानी जाकर पुनः आश्रम में भेज दी गई।

समय पर उसके एक पुत्र हुआ। एक दिन मगध के राजा को आश्रम में एक बालक के रोने का शब्द सुनाई दिया। उन्होंने जब यह जाना कि एक भिक्षुणी माता हुई है तो उस बालक को माँग कर ले गए। मगध के राजमहल में बालक का राजकुमारों की भाँति लालन-पालन हुआ। इस बालक में असाधारण ज्ञान के लक्षण बहुत थोड़ी आयु में ही प्रगट हो गए और सात वर्ष का होने पर उसे तथागत ने अपनी शरण में ले लिया। यही ज्ञानी भिक्षु कश्यप अथवा राजकुमार कश्यप के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

भगवान बुद्ध के समक्ष चर्चा चलने पर उन्होंने कहा, "तथागत ने इसी जन्म में माता और पुत्र की रक्षा नहीं की है, इससे पूर्व भी उन्होंने ऐसा ही किया था। ऐसा कहकर उन्होंने पूर्व जन्म की कथा सुनाई।

अतीत कथा

एक बार, जब काशी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था बोधिसत्व का जन्म एक मृग के रूप में हुआ। जन्म से ही इस मृग का शरीर सोने के रंग का था, उसकी आँखें रत्नों की भांति दमकती थीं, उसके सींग चांदी की भांति श्वेत रंग

के थे, उसका मुख रक्तवस्त्र की पोटली के समान तथा उसकी पूंछ सुरागाय की पूँछ के सदृश थी। उसके साथ ५०० तरुण मृगों तथा मृगियों का समूह था। लोग उसे निग्रोध मृगराज कहते थे। निकट में ही मृगों का एक दूसरा समूह रहता था उसके सरदार के शरीर का भी रंग सोने का था। उसे लोग शाखा मृग कहकर पुकारते थे।

काशी के राजा को आखेट बहुत प्रिय था। वह अपना राज-काज छोड़ कर प्राय: ही आखेट को चला जाया करता था। राज्य के लोगों ने सोचा राजा मृगया के लिये राज्य का सब काम छोड़ कर चला जाता है, इससे हम सबको अ-सुविधा होती है, क्यों न हम लोग राजा के उद्यान में ही बन के मृगों को हाँक लावें। ऐसा सोचकर उन्होंने उद्यान में बहुत-सी घास बो दी और मृगों के पीने के लिये पानी की भी व्यवस्था कर दी। इसके पश्चात् वे जंगल में गए और मृगों को घेरकर उद्यान में कर दिया। फाटक बंद हो जाने से अब कोई मृग बाहर न जा सकता था। एक बार राजा उद्यान में गया वहाँ उसने अन्य मृगों के साथ बोधिसत्व (स्वर्ण मृग) को भी देखा। उस मृग के रूप और गुणों से प्रभावित हो उसने उसके वध का निषेध कर दिया। परन्तु वह स्वयम् धनुषबाण लेकर उद्यान में जाता था और अन्य मृगों का शिकार नित्य ही किया करता था।

बोधिसत्व ने मृगों की प्राण रक्षा के लिये एक उपाय निकाला। शाखामृग को बुलाकर उसने सलाह की और यह

निश्चय किया कि आखेट की प्रथा बन्द की जाय। एक मृग वध-भूमि पर नित्य नियम पूर्वक भेज दिया जाय। नियम मान्य होगया और राजा ने मृगों का शिकार बन्द कर दिया। एक दिन एक गर्भिणी मृगी ने शाखामृग से कहा, "आज मेरी बारी वध भूमि में जाने की है परन्तु मैं गर्भवती हूँ। मेरे साथ एक मृग की और भी हत्या हो जायगी। आप मेरे स्थान पर किसी दूसरे मृग को भेज देने की व्यवस्था कर दें।" परन्तु शाखा-मृग ने कहा नहीं, "आदेश का पालन करना तुम्हारा कर्तव्य है बार-बार आदेश बदलने से व्यवस्था नष्ट होजाती है।" इस क्रूर निर्णय को सुनकर मृगी निराश होगई परन्तु उसने साहस नहीं छोड़ा और बड़ी आशा के साथ बोधिसत्व से अपनी व्यथा निवेदन की। बोधिसत्व ने कहा, "तू निर्भय रह। मैं दूसरी व्यवस्था कर दूँगा। मृगी प्रसन्न होकर चली गई।

दूसरे दिन वधिक ने राजा से निवेदन किया, "महाराज वधभूमि पर आज निग्रोधमृग उपस्थित है जिसे मारने का आपने निषेध किया है। राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ। वह हाथी पर चढ़कर वधभूमि पर पहुँचा। निग्रोधमृग को देखकर राजा ने कहा, "हे मृगराज! मैंने तुम्हें प्राणदान दिया था। फिर तुम्हारे इस स्थान पर आने का क्या कारण है?

बोधिसत्व ने कहा, "हे राजन्! मेरे पास एक मृगी ने आकर कहा कि मैं गर्भवती हूँ अतः मेरे स्थान पर किसी दूसरे मृग को भेजने की व्यवस्था की जाय। उसकी जीवन-

रक्षा के लिये मैं स्वेच्छापूर्वक अपने को अर्पित कर रहा हूँ। आप इसका कुछ और अर्थ न समझें।

राजा ने कहा, "हे मृगराज! मैंने इतना बड़ा त्याग करने वाला व्यक्ति मनुष्यों में भी नहीं देखा है। तुम धन्य हो। मै तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ और तुम्हारे साथ उस मृगी को भी अभय करता हूँ।"

बोधिसत्व ने कहा, "हे राजन्! दो की प्राण रक्षा से क्या होगा। शेष तो मृत्यु मुख में जायँगे ही।"

राजा ने कहा, "अच्छा मैंने उन सब को भी अभय किया।"

बोधिसत्व ने फिर कहा, "इससे तो उद्यान के मृगों की प्राण-रक्षा हुई। परन्तु उद्यान से बाहर वाले बाणों का लक्ष्य बनेंगे ही।"

राजा ने कहा, "अच्छी बात है। मैंने सम्पूर्ण मृग जाति को अभय किया।"

बोधिसत्व ने कहा, "हे राजन्! तेरी दया अपार है। परन्तु दया में कृपणता अच्छी नहीं। मृगों की रक्षा होने पर भी अन्य चतुष्पद विपत्तिग्रस्त रहेंगे।"

राजा ने कहा, "हे लोक कल्याण-कामी तेरी प्रसन्नता के लिये मैं समस्त चतुष्पद जगत् को अभय देता हूँ।"

इसी प्रकार बोधिसत्व ने राजा से जलचर, नभचर और थलचर समस्त जीवों को अभय दान दिला दिया। अंत में

बोधिसत्व से पंचशील का उपदेश प्राप्त कर राजा अपने महल को लौट गया। बोधिसत्व जीवों को अभयदान दिला कर अपने अनुयायियों सहित पुन: वन में चले गए।

समय आने पर मृगी ने एक सुन्दर शावक को जन्म दिया। जब वह बड़ा हुआ तो उसकी माँ ने उसे उपदेश रूप में उपरोक्त कथा सुनाई।

कथा के अंत में भगवान ने कहा इस जन्म का देवदत्त ही उस जन्म में शाखामृग था, आनन्द काशी का राजा था, भिक्षुणी गर्भिणी मृगी थी और उसका बालक राजकुमार कश्यप मृग-शावक था। मैं स्वयं तो निग्रोधमृग था ही।

◆◆◆◆◆

निग्रोधमिग जातक—
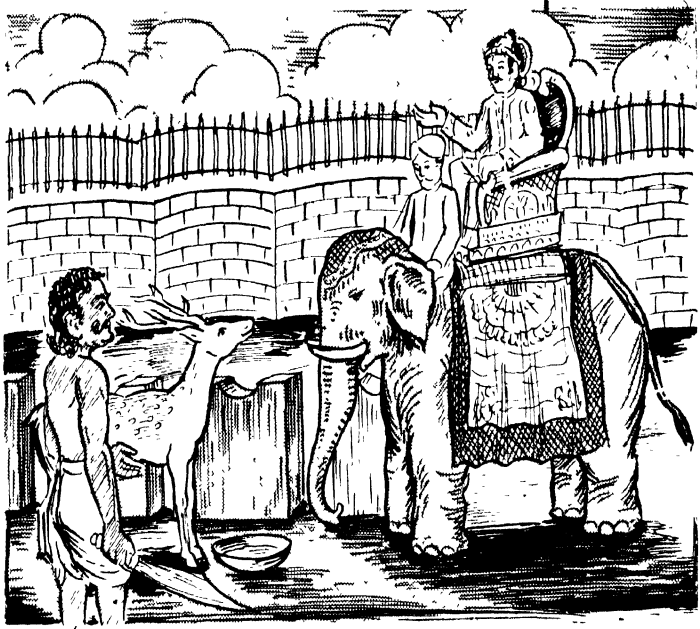
राजा ने कहा, "हे लोक कल्याण-कामी, तेरी प्रसन्नता के लिये मैं समस्त चतुष्पद जगत् को अभय देता हूँ। (पृष्ठ ७)

२

कुलावक जातक

गाथा

[हे मातलि ! सिम्बलि वन के गरुड़-शावकों को रथ के अगले भाग से कुचलने से बचाओ। हम असुरों को अपने प्राण चाहे दे दें परन्तु इन पक्षियों के घोंसले नष्ट न होने पाएँ।]

वर्तमान कथा

एक बार भगवान बुद्ध के समीप आकर दो भिक्षुओं ने प्रणाम किया। भगवान ने प्रश्न किया, "कहाँ से आ रहे हो ? मेल-मिलाप से तो रहते हो न ?"

उनमें से एक भिक्षु बोला, "भगवन् ! मेरे पास पानी छानने के लिये छन्ना न था। मेरे इस साथी ने मुझे अपना छन्ना न दिया। मुझे प्यास बहुत जोर से लगी थी अतः मैंने बिना छना पानी पी लिया।

भगवान ने कहा, हे भिक्षु ! विपत्ति पड़ने पर ही तो धर्म विषयक आस्था की परीक्षा होती है। सुन, मैं अपने पूर्व जन्म की एक कथा सुनाता हूँ।"

अतीत कथा

मगध देश के मचल ग्राम में एक बार बोधिसत्व का जन्म हुआ। यहाँ उनका नाम मघमाणवक रखा गया। उस

गाँव में तीस कुल थे। प्राय: सदाचार के अभाव में सभी लोग दुखी रहते थे। परिश्रम न करना, मद्य मांस का सेवन तथा अन्य बुरी आदतोंके कारण जब उनकी हालत बहुत दयनीय हो गई तब उन लोगों ने मघ-माणवक के परामर्श के अनुसार कार्य आरंभ किया। सब लोग प्रात:काल उठकर पूर्व निश्चित कार्यों में लग जाते थे और शाम को घर आकर विश्राम करते थे। उन्होंने आस-पास के बनों को काटकर साफ भूमि खेती के लिए निकाली, चट्टानों और टीलों को काटकर अच्छे मार्ग बनाए, तालाब, पुल और शालाओं का निर्माण कर उन्होंने मचल ग्राम को सब प्रकार से सुन्दर और सुखमय बना लिया। उसी गाँव में एक भोजक रहता था, जो मांस, मदिरा तथा अन्य वस्तुएँ बेचकर ग्रामवासियों को ठगा करता था। लोगों के मद्य मांस त्याग कर आत्मनिर्भर बन जाने से उसे बहुत हानि उठाना पड़ी क्योंकि उसका सब धन्धा ही समाप्त हो गया। उसने राजा से शिकायत की कि ग्राम में बहुत-से चोर आ गए हैं। राजा के सिपाहियों के आने पर उसने उन तीसो आदमियों को पकड़वा दिया।

राजा क्रोध से पागल हो रहा था, उसने बिना पूरी बात समझे आदेश दिया कि इनको मस्त हाथी के पैरों से कुचलवा डालो। दूसरे दिन सब लोग मैदान में हाथी द्वारा चोरों के कुचले जाने का तमाशा देखने को एकत्र हुए परन्तु बहुत यत्न करने पर भी जब हाथी उन चोरों के ऊपर आक्रमण करने को आगे न बढ़ा तो राजा ने मघमाणवक को बुलाकर

पूछा, 'तुम कौन-सा मन्त्र जानते हो ?' मघ ने कहा "हमारा मंत्र है १ चोरी न करना २ हिन्सा न करना ३ झूठ न बोलना ४ शराब न पीना और ५ सब से मित्रभाव रखना । हम लोग तालाब खोदते हैं, रास्ते बनाते हैं, शालाएँ बनाते हैं और सब को सुखी बनाने के लिये काम करते हैं ।"

मघमाणवक की बातों का राजा पर प्रभाव पड़ा । उसने पूछ-ताछ की तो सब बातें सही पाईं । उसने प्रसन्न हो उन्हें छोड़ दिया । उस भोजक बनिये पर राजा को बड़ा क्रोध आया और उसने उसका सब धन छीनकर उन तीस व्यक्तियों को दे दिया ।

इस प्रकार मिले हुये धन से तीसो व्यक्तियों ने मघमाणवक की सलाह से एक विशाल ग्राम भवन का निर्माण करने का निश्चय किया । मघ के घर में उस समय चार स्त्रियाँ थीं जिनके नाम थे सुधर्मा, चित्रा, नन्दा और सुजाता । सुधर्मा ने चाहा कि ग्राम भवन के निर्माण में स्त्रियों को भी कुछ कार्य करने का अवसर दिया जाय । परन्तु उस समय स्त्रियों को इस प्रकार के कार्य करने की मनाही थी । मघ ने कहा, "तुम चुप-चाप इस भवन के लिए कर्णिकाएँ (धन्नियाँ) बनवा-कर उन्हें छिपा कर रखो ।" शाला भवन बन जाने पर जब छत का काम आरम्भ करने का समय आया तब मालूम हुआ कि कर्णिकाएँ तो बनी ही नहीं । लोगों ने कहा, "वृक्ष काटकर कर्णिकाएँ बनाओ ।" मघ ने कहा, "हरी लकड़ी की कर्णिकाएँ ठीक न होंगी । क्यों न सुधर्मा की कर्णिकाएँ

हम ले लें ?" पहले तो लोगों ने नारी की वस्तु लेने से इनकार किया परन्तु मघमाणवक के समझाने से वे ले ली गई। स्त्रियों का सहयोग भी अच्छे कामों में लिया जा सकता है यह बात धीरे-धीरे मान ली गई। भवन बन जाने पर चित्रा ने उसके आस-पास सुन्दर बाग लगाया और नन्दा ने एक अच्छा सरोवर बनवाया। केवल सुजाता ने कोई सहयोग इस काम में नहीं दिया।

कालान्तर में मघमाणवक ने शरीर त्याग दिया और अच्छे कर्म करने से अगले जन्म मे इन्द्र हुआ। उसकी तीनों पत्नियाँ सुधर्मा, चित्रा और नन्दा यहाँ भी उसकी पत्नियाँ हुईं। जन हितकारी कार्य में सहयोग न देने के कारण सुजाता को एक सूखे जंगल में बगुला पक्षी की योनि मिली और वह दुखी रहने लगी।

इन्द्र पद प्राप्त होने पर बोधिसत्व का ध्यान देवों और असुरों के बीच चलने वाले झगड़ों की ओर गया। असुर बहुत झगड़ालू थे, अतः उन्हें दिव्य-पान द्वारा अचेत कराकर सुमेरु पर्वत के नीचे समुद्र के पास के प्रदेश में पहुंचा दिया गया। चेत आने पर असुरों को सब बात मालूम हुई और वे सुमेरु पर्वत को पार कर पुनः देव लोक में आने का प्रयत्न करने लगे। उन्हें इस प्रयत्न से रोकने के लिये इन्द्र ने उन पर आक्रमण किया। परन्तु असुर क्रोध से पागल हो रहे थे, उन्हें जीतना कठिन होगया। निराश हो इन्द्र का सारथी मातलि रथ को समुद्र तट से जंगलों के बीच से

हाँकता हुआ द्रुत गति से देवपुर की ओर ले जाने लगा। मार्ग में गरुड़ पक्षियों के बहुत-से घोंसले थे जो रथ के वेग से चलने से टूट-टूटकर गिरने लगे। गरुड़ शावकों का क्रन्दन सुन इन्द्र ने कहा मातलि अपने प्राणों की रक्षा के लिये मैं गरुड़–शावकों को नष्ट नहीं होने दूंगा। तुम इस मार्ग को त्याग दो। उपरोक्त गाथा का यही आशय है।

असुर देवपुर जा पहुँचे परन्तु इन्द्र के पुनः आ जाने से वे डर कर भाग गए। बोधिसत्व (इन्द्र) ने अब देवों और असुरों के नगरों के बीच पाँच चौकियाँ डलवा दीं और उन्हें आदेश दे दिया कि जो भी अपनी सीमा से बाहर बढ़ने का प्रयत्न करे उसे बलप्रयोग द्वारा तुरन्त रोक दो। इस प्रकार देवताओं और असुरों के बीच चलने वाले युद्धों का अन्त होगया और दोनों नगर अयुद्धपुर कहलाने लगे।

अब बोधिसत्व को सुजाता की चिन्ता हुई। उन्होंने उसे पंचशील की शिक्षा देकर धर्मरत किया। उसने घोर कष्ट पाकर भी संयम न छोड़ा और जन्मान्तर में पुनः अपनी तीन सहेलियों के साथ बोधिसत्व की सहचरी बनी।

◆◆●◆◆

३

बक जातक

गाथा

[धूर्त अपनी धूर्तता से सदा सुखी नहीं रह सकता। धूर्त बुद्धि वाला बगुले और केकड़े के समान अपने किये का फल भोगता है।]

वर्तमान कथा

जेतवन के विहार में एक भिक्षु चीवर बनाने का काम करता था। वह इस काम में बड़ा दक्ष था। कपड़े को काटना, रफ़ू करना, सीना, रँगना, कलफ करना और फिर उन्हें शंख से रगड़कर सुन्दर चमकदार बना देना सब क्रियाओं में वह अत्यंत कुशल था। धीरे-धीरे उसके मन में पाप उदय हुआ। उसने पुराने फटे चीथड़ों को लेकर उन्हें काट छाँटकर नए चीवर बनाने में अपनी समस्त कला-कुशलता का प्रदर्शन करना आरंभ कर दिया। ये चीवर इतने सुन्दर दिखाई देते थे कि बहुत-से भिक्षु अपने नए चीवर देकर उससे वे चीथड़ों के चीवर बदलकर ले जाने लगे। आरम्भ में वे चीवर अच्छे दिखते थे परंतु धोने पर उनके दोष प्रगट हो जाते थे। ये चीवर टिकाऊ भी बहुत कम होते थे। धीरे-धीरे उसकी ठगी की चर्चा सर्वत्र होने लगी।

नगरों से दूर एक ग्राम में एक दूसरा चीवर-वर्द्धक रहता था। वह भी इस काम में बड़ा निपुण था। एक दिन कुछ भिक्षुओं ने उसे जेतवन के ठग भिक्षु की बात सुनाई। ग्रामीण भिक्षु की इच्छा उस ठग भिक्षु की चतुरता की थाह लेने की हुई। उसने बड़े परिश्रम से एक अत्यन्त सुन्दर चीवर बनाया और उसे पहनकर जेतवन पहुँचा। जेतवन में चीवर-वर्द्धक भिक्षु के पास जाकर उसने कहा, "मैंने आपके चीवरों की बड़ी प्रशंसा सुनी है। क्या आप मेरा चीवर बदल देंगे?" ठग की दृष्टि उस भिक्षु के चीवर पर पड़ी। "इतना सुन्दर! एकदम नया!" उसने अपने मन में ठान लिया कि वह चीवर बदलेगा। भीतर जाकर वह कई चीवर निकाल लाया। आगन्तुक ने उनमें से एक पसन्द करके अपना चीवर उतारकर दे दिया। और धन्यवाद देकर चलता बना। कुछ दिन बाद उस ठग ने उस नए चीवर को निकालकर उसे ध्यान से देखा। "अरे यह क्या! यह तो एकदम सड़े कपड़े का बना है। जगह-जगह फटा है, जिसे बड़ी सुन्दरता से रफू कर दिया गया है।" धीरे-धीरे ठग के ठगे जाने की बात भगवान बुद्ध के पास पहुँची। उन्होंने कहा, "ये ठग इसी जन्म में ठगी नहीं करते; पिछले जन्मों में भी ये ऐसा ही करते रहे हैं।"

अतीत कथा

किसी समय एक जंगल के बीच में दो तालाब थे। एक तालाब छोटा था दूसरा बड़ा। ग्रीष्म ऋतु में छोटे तालाब का पानी सूख जाने से उसमें रहने वाले जल-जीवों को कष्ट होने

लगा। पर वे कर ही क्या सकते थे ? एक दिन एक बगुला आकर उनके बीच में खड़ा होगया। मछलियों ने पूछा, "क्यों महाशय, आप यहाँ कैसे पधारे ?"

बगले ने कहा, "क्या करूं, तुम लोगों का दुःख देखा नहीं जाता। मैं जगल के दूसरी ओर वाले बड़े तलाब के किनारे रहता हूँ। वहाँ खूब पानी है। परंतु आपका तालाब तो सूख रहा है।"

मछलियों ने कहा, "जो भाग्य में लिखा होता है वही होता है। जियें या मरें; हमारे लिये इस तालाब को छोड़ और कोई स्थान नहीं है।"

बगुले ने कहा, "यदि आप विश्वास करें तो मैं एक-एक करके आपको अपनी चोंच से उठाकर उस तालाब में छोड़ आऊँ।" मछलियों ने कहा, "तुम मछलियों को खा जाते हो, भला, हम तुम्हारा विश्वास कैसे कर सकती हैं ?"

बगुला बड़ा धूर्त था। उसने कहा, "यदि आप में-से एक मेरे साथ चलकर उस बड़े तालाब को देख आवे और यदि मैं उसे फिर आपके पास लाकर छोड़ दूं, तब तो आप मेरा विश्वास अवश्य ही कर लेंगी। सच जानिये मैंने जन्म भर जो पाप किये हैं आज उनका प्रायश्चित्त एक अच्छा काम करके करना चाहता हूँ।"

मछलियाँ बहुत सीधी थीं। वे उसके इस प्रस्ताव पर सहमत हो गईं। एक छोटी मछली को अपनी चोंच में लेकर

बगुला उड़ा और उसे ले जाकर वह बड़ा तालाब दिखाया। जिसमें जल की लहर उठ रही थी और कमल खिल रहे थे। वापिस आने पर छोटी मछली ने उस तालाब की बड़ी प्रशंसा की। उसकी बातें सुन सब मछलियाँ उस बड़े तालाब में जाने को राजी होगई।

अब बगुले की बन आई। वह छोटे तालाब से मछलियों को अपनी चोंच में दाबकर अपने घोंसले पर ले जाने लगा। इस प्रकार उसने तथा उसके परिवार ने मिलकर सब मछलियाँ खा डालीं। अंत में एक केकड़ा बच रहा। उसने कहा, "बगुला भाई! मैं तो मछली नहीं हूँ। तुम्हें मुझे चोंच में सम्हालने में कष्ट होगा। अपनी इन अनेक टाँगों के सहारे मैं तुम्हारे गले से चिपट जाऊँगा और तालाब के पास पहुँच कर धीरे से जल में कूद पड़ूंगा।" इतनी मछलियाँ खाकर बगुले का लोभ बहुत बढ़ गया था। उसने सोचा, "घोसले में चल कर इसे भी ठिकाने लगा दूंगा।" वह राजी हो गया। केकड़ा बगुले की गर्दन से लिपट गया। घोंसले के पास पहुँचकर केकड़ा बोला, "भाई साहब! तालाब कहाँ है ?"

बगुले ने कहा, "सब अभी बताता हूँ, जरा नीचे उतरो।"

केकड़ा सब समझ गया। उसने अपनी टाँगों से बगुले की गर्दन को इतना कसा कि उसके प्राण निकल गए।

भगवान बुद्ध ने कहा उस समय का बगुला आज का जेतवन वाला चीवर-वर्द्धक है और केकड़ा ग्रामवासी भिक्षु।

४

वेदब्भ जातक

गाथा

[जो अनुचित उपायों से धन पाना चाहता है वह नष्ट हो जाता है। चेतिय देश के चोरों ने वैदर्भ ब्राह्मण को मार डाला और वे सब भी मृत्यु को प्राप्त हुए।]

वर्तमान कथा

जेतवन में विहार करते समय भगवान बुद्ध ने एक भिक्षु से कहा, "ऐसा नहीं है कि तू केवल इसी जन्म में अच्छी बात मानने से इनकार करता है। पूर्व जन्म में भी तेरी यही अवस्था थी जिसके कारण तुझे प्राण गँवाने पड़े थे और तेरे साथ एक सहस्र मनुष्यों की और भी प्राणहानि हुई थी।" जिज्ञासा करने पर उन्होंने उसके पूर्व जन्म की कथा इस प्रकार बताई।

अतीत कथा

पूर्व समय में काशी में एक ब्राह्मण रहता था। इस ब्राह्मण को वैदर्भ मंत्र सिद्ध था, जिसके द्वारा वह ग्रह-नक्षत्रों का विशेष योग आने पर आकाश से रत्नों की वर्षा करा सकता था। उस समय बोधिसत्व एक शिष्य के रूप में उसके पास विद्याभ्यास करते थे।

एक दिन वह अपने शिष्य को साथ ले किसी काम से चेतिय राष्ट्र की ओर गया। जब वे घने जंगलों में होकर जारहे थे उस समय सहसा उन्हें पाँच सौ पेसनक चोरों ने घेर लिया। ये चोर किसी का वध नहीं करते थे। वे लोगों को पकड़ लेते थे और निश्चित धन मिल जाने पर छोड़ देते थे। उन्होंने गुरू को रोक लिया और शिष्य (बोधिसत्व) को धन लाने को भेजा। चलते समय शिष्य ने कहा, "गुरूदेव ! डरियेगा नहीं। मैं धन लाकर शीघ्र ही आपको मुक्ति दिला दूंगा।" शिष्य के चले जाने पर गुरू ने हिसाब लगाकर देखा तो रत्न वर्षा के लिये उपयुक्त योग उसी दिन था। उन्होंने सोचा, "क्यों न रत्न बरसा कर इन चोरों को संतुष्ट कर दूं और स्वयम् मुक्त हो जाऊँ।"

उन्होंने चोरों से कहा, "मेरा बंधन खोल दो। मैं तुम्हें अपार रत्न-राशि दिला सकता हूँ।"

चोरों ने ब्राह्मण का आदेश मानकर उसे नहला धुला-कर, सुगंधित द्रव्यों का लेप कर, उसे पुष्प मालाएँ पहिनाईं। आकाश की ओर देख, समय का अनुमान कर ब्राह्मण ने मंत्र का जाप आरम्भ किया। थोड़ी ही देर में एक सुनहरा बादल आकाश में प्रगट हुआ और पृथ्वी पर रत्न बरसने लगे। चोरों ने धन समेट लिया और ब्राह्मण से क्षमा माँगकर उसका बड़ा सम्मान किया। इसके पश्चात् वे सब एक ओर को चल दिये।

जंगल में थोड़ी दूर जाने पर उन्हें चोरों का एक दूसरा दल मिला जिसने उन्हें पकड़ लिया। यह पूछने पर कि,

"हमें क्यों पकड़ा है," उन्होंने कहा, "हमें धन चाहिए।" चोरों ने कहा, "यह हमारे साथ जो ब्राह्मण है वह आकाश से धन की वर्षा कराता है। हमें भी यह धन इसी ने दिलाया है। जब चोरों ने ब्राह्मण से धन बरसाने को कहा तब उसने उत्तर दिया, "धन की वर्षा विशेष योग आने पर ही हो सकती है। तुम्हें एक वर्ष ठहरना होगा।"

चोरों को क्रोध आगया। उन्होंने कहा, "क्यों रे दुष्ट! इन लोगों के लिये तो अभी धन बरसाया था और हमें एक वर्ष ठहरने को कहता है।"

ऐसा कह तलवार से उसके दो खण्ड कर डाले। अब दोनों चोर दलों में युद्ध आरंभ हुआ। पहले वाले सब चोर मारे गए। पीछे वाले चोर सब धन लेकर जंगल में चले गए।

जंगल में धन के बटवारे पर उन चोरों में भी झगड़ा होगया। भयंकर युद्ध में वे सब मारे गए। केवल दो व्यक्ति बच रहे।

दोनों चोरों ने सब धन एक तालाब के पास गाड़ दिया। एक खड्ग लेकर पहरा देने लगा और दूसरा चावल पकाने लगा क्योंकि दोनों को खूब भूक लगी थी। परन्तु दोनों के मन में पाप पूरी तरह समाया हुआ था। प्रत्येक अपने साथी को मार कर समस्त धन स्वयम् लेने की इच्छा रखता था। चावल पका लेने पर चोर ने स्वयम् भोजन किया और शेष

में विष मिलाकर अपने साथी के पास लेगया। इधर प्रहरी चोर ने सोचा "इस कंटक को तुरन्त ही नष्ट कर डालना चाहिए।" अतः जब उसका साथी भात लेकर उसके निकट आया उसी समय उसने तलवार से उसपर आक्रमण कर उसे मार डाला। प्रहरी भूखा था। अतः सपाटे से सब चावल खा गया और विष के प्रभाव से मर गया।

बोधिसत्व जब धन लेकर लौटे उस समय उन्होंने बन में केवल शवों के ढेर ही पाए। यह कथा सुनाकर भगवान ने उपरोक्त गाथा कही।

◆◆◇◆◆

५

महासीलव जातक

गाथा

[पुरुष को आशा लगाए रखना चाहिए। विद्वान निराश न हो। मैं स्वयम् को ही देखता हूँ। जैसी इच्छा की थी उसी के अनुसार सब कुछ हुआ।]

वर्तमान कथा

एक बार एक निराश भिक्षु से भगवान बुद्ध ने प्रश्न किया, "क्यों भिक्षु ! क्या तू सचमुच ही हिम्मत हार बैठा है ?" भिक्षु बोला, "हाँ भगवन्" !

बुद्ध ने कहा, "कल्याणकारी शासन में प्रव्रजित होकर हिम्मत नहीं हारना चाहिए। पूर्व काल में बुद्धिमानों ने राज्य खोकर हिम्मत बनाए रखी थी और अपने नष्ट हुए यश को फिर से प्राप्त किया था।"

भिक्षुओं के जिज्ञासा करने पर भगवान ने पूर्व काल की कथा इस प्रकार सुनाई।

अतीत कथा

एक बार बोधिसत्व का जन्म काशिराज की पटरानी की कोख से हुआ। उनका नाम पण्डितों ने सीलव रखा। पिता

के स्वर्ग सिधारने पर सीलव महासीलव के नाम से काशीके सिंहासन पर आसीन हुआ। महासीलव बड़ा धार्मिक राजा था। उसके राज्य में प्रजा अत्यंत सुखी थी, कोई कभी भूखा नहीं रहता था, लोग पाप से घृणा करते और सदाचरण रत थे।

एक बार एक मन्त्री को, उसका आचरण सदाचार से गिरा होने के कारण, राजा ने राज्य मे निकाल दिया। वह मन्त्री काशी से चलकर कोशल राज्य में पहुँचा और थोड़े दिनों में ही वहाँ के राजा का विश्वासपात्र बन गया।

एक दिन नए मन्त्री ने कोशलराज से कहा, "महाराज! काशी का राज्य एक मधुपूर्ण छत्ते के समान है। इस समय बिना विशेष प्रयास के ही उसपर अधिकार किया जा सकता है।" राजा ने पहले तो इस झमेले में न पड़ने का ही निश्चय किया, परन्तु मन्त्री ने जब यह कहा कि "राज्य पर अधिकार बिना युद्ध ही के हो जायगा" तो वह एक बड़े राज्य के पाने का लोभ न रोक सका। धीरे-धीरे कोशल के लोगों ने काशी की सीमा में प्रवेश कर लूटपाट आरम्भ कर दी। महासीलव ने उन्हें बुलाकर पूछा, "तुम किसलिये यह अनाचार करते हो?" उन्होंने उत्तर दिया, "धन पाने के लिये।" राजा ने उन्हें धन देकर संतुष्ट कर दिया। कोशलराज को विश्वास होगया कि काशी का राजा युद्ध नहीं करना चाहता। उसने सेना लेकर काशी पर आक्रमण कर दिया। काशिराज महासीलव के योद्धाओं ने युद्ध करने की अनुमति माँगी, परंतु राजा ने मना कर दिया। कोशलराज ने बिना विरोध ही

राजभवन में प्रवेश किया। "राज्य के लिये मैं मनुष्यों का रक्त बहाना उचित नहीं समझता" ऐसा कहकर महासीलव ने सिंहासन खाली कर दिया।

नीच मन्त्री ने कोशलराज के कान में कहा, "महाराज भी कहीं ऐसी ही उदारता दिखाने की भूल न कर बैठें।" कोशलराज के आदेश से महासीलव तथा उसके मन्त्री और योद्धागण जीवित ही स्मशान में गाड़ दिये गए। केवल उनका सिर भर बाहर निकला छोड़ दिया गया।

रात्रि में स्मशान में सियारों के दल आए। उनके पास आने पर सब योद्धा चिल्ला उठे जिससे सियार डर कर भाग गये। थोडी देर में सियार फिर लौटे। महासीलव ने एक तगड़े सियार को अपनी ठुड्ढी के नीचे दाब लिया। सियार ने छूटने के लिये भरपूर जोर लगाया पर न छूट सका। इस खींचतान में गड्ढे की मिट्टी ढीली पड़ गई और महाराज महासीलव प्रयत्न करके उससे बाहर निकल आए। उन्होंने सियार को छोड़ दिया जो अपने साथियों सहित वन में भाग गया। इसके पश्चात् उन्होंने अपने सब साथियों को भी गड्ढों से बाहर निकाल लिया।

इसी समय स्मशान में कुछ लोग एक शव छोड़ गए जिसके बटवारे के लिये दो यक्षों में झगड़ा आरम्भ होगया। बोधिसत्व ने यक्षों से कहा, "यदि तुम हमारा कुछ काम करो तो मैं इस शव को काटकर ठीक दो भाग कर दूंगा।" यक्ष राजी होगए।

राजा ने खड्ग से काटकर शव के ठीक दो भाग कर दिये जिससे यक्षों को संतोष हुआ। मांस खा चुकने पर यक्षों ने राजा से पूछा, "हमें आप क्या करने का आदेश देते हैं ?"

राजा महासीलव ने यक्षों से कहा, "मुझे अत्यन्त गुप्त रूप से राजभवन में पहुँचा दो और इन सब योद्धाओं को इनके घर।"

यक्षों ने राजा के आदेश का पालन तत्काल कर दिया।

कोशल का राजा आराम से सो रहा था। महासीलव ने तलवार की नोंक उसके पेट में चुभो कर उसे जगाया। महासीलव को सामने देखकर वह एकदम घबड़ा गया। उसने सोचा, इस धर्मात्मा राजा में अवश्य ही कुछ अलौकिक शक्ति है तभी तो यह सेना और पहरेदारों से घिरे हुए प्रासाद में अकेला निर्विघ्न चला आया।

उसने बोधिसत्व के चरणों पर गिर कर क्षमा मांगी। दूसरे दिन सबेरे सब लोगों को बुलाकर उसने उस चुगुलखोर मन्त्री को दंड दिया और अपनी सेना सहित काशी छोड़ कर कोशल की ओर प्रस्थान कर गया।

इस कथा का मर्म भिक्षुओं को समझाते हुए भगवान बुद्ध ने उपरोक्त गाथा कही।

◆◆●◆◆

६

आरामदूषक जातक

गाथा

[उपकार करने में अकुशल आदमी का उपकार भी सुख-दायक नहीं होता। माली के बन्दर की भाँति मूर्ख मनुष्य काम की हानि ही करता है।]

वर्तमान कथा

एक बार भगवान बुद्ध कोशल राज्य में भ्रमण कर रहे थे। एक गरीब की कुटिया पर पहुँचने पर गृहपति ने उन्हें मध्यान्ह का भोजन करने का निमंत्रण दिया। गृहपति ने भिक्षुओं सहित भगवान का सत्कार किया। कुटिया के आस-पास वृक्ष लगे थे। भगवान भिक्षुओं सहित वहीं टहलने लगे। सहसा उनकी दृष्टि एक ऐसे स्थान पर पड़ी जहाँ न कोई वृक्ष था न किसी प्रकार की घास ही उगी थी। पूछने पर माली ने बताया कि जब वृक्ष लगाए जारहे थे तब एक मूर्ख बालक ने वृक्षों को उखाड़-उखाड़ कर उनकी जड़ें नाप-नाप कर पानी दिया था जिससे सब वृक्ष जड़ से उखड़ कर नष्ट होगए थे। भगवान ने हँसते हुए कहा, "मूर्ख लड़के ने प्रथम बारही बाग नहीं उजाड़ा है। इससे पूर्व भी इसने ऐसा ही किया था। जिज्ञासा प्रगट करने पर उन्होंने पूर्व जन्म की कथा इस प्रकार सुनाई।

अतीत कथा

काशी के राजा ब्रह्मदत्त के राज्य में एक बार नगर में बड़ा उत्सव हो रहा था। राजा के माली की भी इच्छा हुई कि वह भी नगर में जाकर उत्सव देखे। परन्तु उस पर वृक्षों को पानी देने का उत्तरदायित्व था। वह सोचने लगा कि क्या किसी को अपना कार्य सौंप कर मैं एक दिन की छुट्टी नहीं मना सकता? बाग में बहुत-से बन्दर भी रहते थे। वह उनके सरदार के पास गया और याचना की कि, "सरदार साहब मैं एक प्रार्थना करने आया हूँ। नगर में बड़ा भारी उत्सव हो रहा है। मेरी इच्छा है कि मैं भी आज उत्सव देख आऊँ। क्या आप कृपा कर के आज वृक्षों में पानी देने की व्यवस्था करा देंगे? बड़ा उपकार मानूँगा।" विनम्रवाणी सुनकर बंदरों का सरदार द्रवित हुआ और बोला, "तुम प्रसन्नता पूर्वक जा सकते हो मैं सब व्यवस्था करा दूँगा।"

माली चला गया। इधर बंदरों के सरदार ने सब बंदरों को बुलाकर समझाया, "देखो, आज हमें एक परोपकार का काम करना है। बिचारे माली को छुट्टी नहीं मिलती थी। हमने आज उसका काम करने की जिम्मेदारी ली है। हमें बहुत सावधानता पूर्वक सब वृक्षों में पानी देना है। कोई वृक्ष प्यासा न रहे। जिस वृक्ष को जितनी आवश्यकता हो उतना पानी दिया जाय परंतु पानी व्यर्थ नष्ट न किया जाय।"

बंदरों की समझ में न आया कि वृक्षों की प्यास कैसे नापी जायगी? उन्होंने अपने सरदार से पूछा तब उस अति-

बुद्धिमान बंदर ने कहा, "वृक्ष जड़ों से पानी पीते हैं। किसी वृक्ष की जड़ें छोटी होती हैं और किसी की बड़ी। जड़ों की नाप से उनके पानी पीने का अनुमान लगा सकते हो।"

सरदार का आदेश पाकर बंदरों ने काम आरम्भ किया। उन्होंने प्रत्येक वृक्ष को पहले उखाड़ कर उसकी जड़ें नापीं और फिर उसे लगाकर उसी अन्दाज से पानी पिलाया। इस प्रकार सारे बाग को पानी देने में बहुत समय लग गया और बन्दर भी बिलकुल थक गये। उन्हें संतोष था कि उन्होंने अपने सरदार के आदेश का भी पालन किया है और एक परोपकार का काम करके पुण्य भी कमाया है।

दूसरे दिन जब माली वृक्षों को देखने गया तो उसे सब वृक्ष उखड़े हुए मिले। इस प्रकार सारा बाग ही उजड़ गया। दुखी होकर उसने जो कुछ कहा उसी का वर्णन उपरोक्त गाथा में किया गया है।

◆◆◆◆◆

श्राराम दूषक जातक—

प्रत्येक वृक्ष को पहले उखाड़ कर उसकी जड़ें नापीं और फिर उसे लगाकर उसी अन्दाज से पानी पिलाया। (पृष्ठ २८)

७

सच्चंकिर जातक

गाथा

[बुद्धिमानों ने ठीक ही कहा है कि बहती हुई लकड़ी को धारा में से निकालना एक (अकृतज्ञ) मनुष्य को उबारने की अपेक्षा कहीं अच्छा है ।]

वर्तमान कथा

धर्मसभा में बैठे भिक्षुगण एक बार आपस में बातें कर रहे थे कि, "देखो, यह देवदत्त कितना नीच है । भगवान के द्वारा प्रतिकार न किये जाने पर भी वह उनका वध कराने का प्रयत्न कर ही रहा है ।" भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं की बात सुनकर कहा, "यह देवदत्त केवल इसी जन्म में ऐसा कर रहा है, यह मत समझना । पूर्व जन्म में भी यह ऐसा ही करता था ।" भिक्षुओं के आग्रह पर भगवान ने पूर्व जन्म की कथा सुनाई ।

अतीत कथा

पूर्व जन्म में काशिराज के घर एक दुष्ट स्वभाव का पुत्र उत्पन्न हुआ । लोग उसे दुष्टकुमार कहते थे । वह किसी के साथ अच्छा व्यवहार न करता था । लोगों को अपमानित

करके भाँति-भाँति के कष्ट भी देता था। प्रजाजन तथा कर्मचारी सभी उससे असंतुष्ट थे।

एक दिन गंगा की धारा उमड़ रही थी। दुष्टकुमार ने हठ किया कि "इसी समय मुझे बीच धारा में ले चलकर नहलाओ।" सेवकों ने प्रयत्न कर के उसे बीच धारा में पहुँचाया। उमड़ी हुई जलधारा को देख, सेवकों ने सोचा इस दुष्ट से छुटकारा पाने का यह अच्छा अवसर है और उसे वहीं छोड़ लौट गए। दुष्टकुमार रोता-चिल्लाता नदी की वेगवती धारा के साथ बह चला।

राजा के पूछने पर सेवकों ने सलाह करके उत्तर दिया कि "कुमार घाट पर नहीं थे। वर्षा के कारण लौट आए होंगे।" राजा ने कुमार की खोज कराने के लिये बहुत-से अनुचरों को नियुक्त किया।

इधर दुष्टकुमार को नदी में बहता हुआ एक बड़ा लक्कड़ दिख गया। वह प्रयत्न करके उस पर जा बैठा और धारा के साथ बहने लगा। थोड़ी दूर जाने पर पानी से अपनी रक्षा करने के लिये एक सर्प, एक चूहे और एक तोते ने भी उसी लक्कड़ पर आश्रय ग्रहण किया। धारा में डूबने के भय से दुष्टकुमार पहले ही घबड़ाया हुआ था ; अब विषधर सर्प को अपनी बगल में देख वह और भी भयभीत होगया और जोर-जोर से चिल्लाने लगा।

उस समय भगवान बोधिसत्व एक ब्राह्मण परिवार में जन्म ले गंगातट पर कुटी बनाकर रहते थे। मनुष्य का क्रन्दन

स्वर सुन वे तट पर गए और लक्कड़ पर बैठे हुए उन चारों प्राणियों की दुर्दशा देखी । दया से उनका हृदय भर उठा और उन्होंने धारा में घुसकर बड़े यत्न से उस लक्कड़ को किनारे पर लाकर उन चारों की रक्षा की ।

स्वस्थ होने पर चारों प्राणी अपने-अपने घर को चल दिये । चलते समय सर्प बोला, "हे उपकारी ! मेरे पास चालीस कोटि स्वर्ण मुद्राएँ हैं । मैं बड़े यत्न से आज तक उनकी रक्षा करता रहा हूँ । यदि वह धन आपके काम आ सके तो आप जब चाहें ले सकते हैं ।"

चूहे ने कहा, "हे दयामय ! मेरे पास भी तीस कोटि स्वर्ण-मुद्राएँ हैं । आप जब चाहें उन्हें ले सकते हैं ।"

तोते ने कहा, "देव ! मेरे पास स्वर्ण तो नहीं है । परंतु मैं आप को लाल धन दे सकूँगा ।"

बोधिसत्व ने सब का पता ठिकाना पूछ उन्हें बिदा किया ।

दुष्टकुमार को सर्प, तोते और चूहे के साथ होने वाला सद्व्यवहार अच्छा न लगा । उसने मन में कहा, "यह ब्राह्मण मुझे भी क्षुद्र जीवों के समान समझता है । इसने मेरा बड़ा अपमान किया है । मैं इसे इसका मजा चखाऊँगा ।" प्रत्यक्ष में उसने ब्राह्मण से केवल इतना ही कहा, "जब मैं राजा होऊँ उस समय आप काशी अवश्य आइयेगा ।"

बहुत दिन बीत जाने पर बोधिसत्व को इन चारों मित्रों का फिर ध्यान आया । उनकी परीक्षा लेने के लिये वे पहले

सर्प के निवासस्थान पर गए और उसे पुकारा। सर्प ने बाहर आकर भगवान को प्रणाम किया और कहा, "मेरा समस्त धन आपके लिये अर्पित है।" भगवान ने कहा अभी आवश्यकता नहीं है। इसी प्रकार चूहे और तोते की भी परीक्षा लेकर उन्हें अपने वचन पर दृढ़ पाया। अंत में वे दुष्ट राजा की परीक्षा लेने काशी गए। राजा उस समय हाथी पर बैठकर नगर में ठाटबाट से घूम रहा था। उसने दूर से ही देखकर उस ब्राह्मण को पहचान लिया। वह उससे बात नहीं करना चाहता था जिससे उसके उपकार की बात लोगों को न मालूम हो सके। अपने सैनिकों को उसने ब्राह्मण को मारते हुए नगर से निकालने का आदेश दिया। जब बोधिसत्व पर मार पड़ती थी उस समय वे रोते न थे; केवल उपरोक्त गाथा का पाठ करते थे। भीड़ में कुछ पंडित भी थे। उन्होंने उसका अर्थ समझने के लिये सैनिकों को रोककर बोधिसत्व से बात-चीत की। जब लोगों को राजा की कृतघ्नता की बात मालूम हुई तो सैनिकों समेत जनता ने विद्रोह कर दिया। वे पहले से ही उसके अत्याचारों के मारे परेशान थे। दुष्ट राजा मारा गया और बोधिसत्व को काशी के राज सिंहासन पर बिठाया गया। सर्प, चूहे और तोते ने अपनी-अपनी भेंट यथा समय बोधि-सत्व के चरणों में उपस्थित कर दी।

वही दुष्ट राजा इस जन्म में देवदत्त होकर उत्पन्न हुआ है।

◆◆◇◆◆

८

महासुपिन जातक

गाथा

[सांड़, वृक्ष, गाएँ, बैल, घोड़ा, कांसा, स्यारी, घड़ा, पुष्करिणी, कच्चा चन्दन, तूंबे डूबते हैं, शिलाएँ तैरती हैं, मेंढकियाँ काले सर्पों को निगलती हैं, राजहंस कौओं के पीछे चलते हैं (और) भेड़िये बकरियों से डरते हैं ।]

वर्तमान कथा

एक बार कोशल के राजा ने रात्रि के पिछले पहर में एक साथ सोलह स्वप्न देखे । इन स्वप्नों को देख वह भयभीत होगया । प्रभात होने पर उसने ब्राह्मणों को बुलाकर सोलहो स्वप्न सुनाए । ब्राह्मण स्वप्न सुनकर हाथ मलने लगे । राजा ने पूछा, "हे द्विजवरो ! इन स्वप्नों का क्या फल होगा ?"

ब्राह्मण बोले, "राज्य, भोग सम्पत्ति और जीवन तीनों पर अथवा तीन में से किसी एक पर संकट अवश्य आएगा ।"

राजा ने पुनः पूछा, "ये स्वप्न स-उपाय हैं अथवा निरुपाय ?"

ब्राह्मणों ने कहा, "यद्यपि ये स्वप्न कठोर और निरुपाय हैं फिर भी हम इनका उपाय करेंगे । यदि ऐसा न कर सकें तो फिर हमारी विद्या ही किस काम की ।"

"क्या उपाय करेंगे आप" राजा ने चिन्ता पूर्वक पूछा।

ब्राह्मणों ने कहा, "हम लोग यज्ञ करेंगे।"

राजा ने स्वीकार कर लिया। राज-भवन में चारों ओर चहल-पहल आरम्भ होगई।

महारानी मल्लिकादेवी को जब यह समाचार मिला तो उन्होंने इस विषय में भगवान बुद्ध का आदेश प्राप्त करने की सलाह दी। महाराज ने तथागत की सेवा में उपस्थित होकर अपने स्वप्नों की बात कही और उनके विषय में क्या करना उचित है यह जानने की जिज्ञासा की।

भगवान बुद्ध ने कहा, "राजन्! स्वप्न का फल क्या होगा यह निश्चय पूर्वक कोई नहीं कह सकता। मैं इस समय केवल इतना ही कह सकता हूँ कि अभी मेरे और तुम्हारे जीवन-काल में इस स्वप्न के कुपरिणामों का कोई भय नहीं है। परन्तु भविष्य में जब धर्म का बिलकुल नाश हो जायगा और पाप बुद्धि सर्वत्र फैल जायगी तब इनके भयंकर परिणाम देखने को मिलेंगे।"

इतना कहकर भगवान ने सब स्वप्नों के फल राजा को बताए और कहा, "जिस प्रकार तू ने ये सोलह स्वप्न देखे हैं इसी प्रकार पूर्व जन्मों में और राजाओं ने भी देखे थे। उस समय भी ब्राह्मणों ने यज्ञों द्वारा उनकी शान्ति बताई थी; परंतु मेरे परामर्श से वे हिंसक यज्ञ रोक दिये गए थे।"

इतना कहकर उन्होंने पूर्व जन्म की एक कथा इस प्रकार सुनाई।

अतीत कथा

वाराणसी के राजा ब्रह्मदत्त ने एक बार इसी प्रकार के सोलह स्वप्न देखे थे। ब्राह्मणों ने निर्णय दिया कि यज्ञों द्वारा ही इन स्वप्नों का कुफल टाला जा सकेगा। इन यज्ञों के पुरोहित का एक शिष्य था माणवक। माणवक हिंसात्मक यज्ञ-विधानों का विरोधी था। उसने कहा, "आचार्य! आपने मुझे तीनों वेद पढ़ाए; परंतु उनमें मुझे कहीं यह लिखा न मिला कि एक जीव के मारने से अन्य जीव सुखी हो सकते हैं।"

पुरोहित ने कहा, "इन यज्ञों द्वारा हम बहुत धन मिलेगा। क्या तू राजा का धन बचाना चाहता है?"

माणवक को अपने लोभी गुरु के प्रति अश्रद्धा होगई। एक दिन वह राजोद्यान में घूम रहा था कि सहसा वहाँ बोधिसत्व के दर्शन होगए। उसने उनसे ब्राह्मणों के हिंसात्मक यज्ञों की चर्चा की और कहा, "भन्ते! राजा तो बहुत भला है; परंतु ये ब्राह्मण उसे डुबो रहे हैं।"

बोधिसत्व ने माणवक से कहा, "यदि तुम्हारा राजा मेरे पास आएगा तो मैं उसे यथार्थ ज्ञान दूँगा।" माणवक द्वारा बोधिसत्व के प्रगट होने का समाचार सुन, राजा तुरन्त उनकी सेवा में उपस्थित हुआ और प्रणाम कर अपने स्वप्नों की बात छेड़ी।

बोधिसत्व ने कहा, "पाप की वृद्धि होने पर अकल्पित घटनाएँ अवश्य घटित होंगी। उनके फलों से बचने का एक

ही उपाय है कि पाप को फैलने से रोका जाय। ये ब्राह्मण जो यज्ञादि कर्म करवाते हैं इनसे पशु वध आदि के द्वारा पाप की वृद्धि ही होती है। इनके द्वारा पाप से मुक्ति कैसे मिल सकती है।"

राजा ने बोधिसत्व को प्रणाम किया और उस दिन से हिंसक यज्ञ विधान बंद करा दिये। जब तक वह जीवित रहा उसके राज्य में कोई ऐसा उपद्रव नहीं हुआ जैसा कि स्वप्नों के फलस्वरूप होने का भय था।

६
इल्लीस जातक

गाथा

[दोनों लँगड़े हैं, दोनों लूले हैं, दोनों की आंखें भेंड़ी हैं और दोनों के सिर में फुन्सियाँ हैं। मैं इल्लीस कहकर किसी को भी पहचान नहीं सकता।]

वर्तमान कथा

राजगृह नगर में मच्छरिय नामक एक अति धनी परंतु अत्यन्त कृपण सेठ रहता था। वह प्रायः ही राज-दरबार में आता जाता था। मार्ग में उसे बहुत-से लोग नाना प्रकार के भोजन करते तथा मनोविनोद करते दिखाई देते थे। परंतु वह कृपण खर्च अधिक होने के भय से न अच्छा खाता था न उत्तम वस्त्र पहनता था और न किसी प्रकार अन्य सुख ही भोग पाता था। उसके मन में कई बार सुख भोगने की इच्छा होती थी परन्तु वह मन मारकर रह जाता था।

एक बार उसने कुछ लोगों को मीठी पिट्ठी से भरी उत्तम पूरियाँ खाते देखा। उन पूरियों से बड़ी अच्छी सुगन्ध निकल रही थी। उसकी इच्छा भी वैसी ही पूरियाँ खाने की हुई परन्तु पैसे खर्च करना होंगे यह सोचकर वह उदास मन घर आकर प पर लेट गया।

सेठानी ने उसे उदास देख पूछा, "क्यों क्या कुछ तबियत ठीक नहीं है ?"

सेठ ने कहा, "नहीं तो, मैं बिलकुल स्वस्थ हूँ ।"

"तो क्या राजा के यहाँ कोई असाधारण चिन्ताजनक बात होगई है ।"

"नहीं, ऐसा कुछ भी नहीं हुआ ।"

"तो फिर क्या आपके मन में किसी वस्तु के भोग की इच्छा उत्पन्न हुई है ।"

अन्तिम प्रश्न का उत्तर सेठ न दे सका । वह चुप-चाप लेटा रहा । सेठानी ने फिर पूछा, "नाथ मुझसे मत छिपाइये । स्पष्ट कहिये किस वस्तु की इच्छा आपके मन में हुई है । मैं उसे ही सुलभ करूँगी ।"

सेठ ने मीठी पूरियों की बात कही ।

सेठानी ने कहा, "मैं अभी व्यवस्था करती हूँ ।"

सेठ ने कहा, "ना-ना-ना, इस घर में बहुत-से आदमी हैं, नौकर चाकर हैं । सबकी जानकारी में पकाने से उन्हें भी देना पड़ेगा ।"

"मैं किवाड़े बन्द करके पका दूँगी" सेठानी ने निवेदन किया ।

सेठ ने इस प्रस्ताव को भी स्वीकार न किया । अंत में तय हुआ कि हवेली की सबसे ऊपर की मंजिल पर ऊपर जाने का रास्ता बंद करके सेठानी मीठी पूरियाँ पकाए ।

सेठानी ने वैसा ही किया। सेठ ने कहा, "देख, मेरे खाने से अधिक एक भी मत पकाना।"

सेठानी ने स्वीकार किया। और तयारी में लग गई।

इधर भगवान बुद्ध ने अपने प्रमुख शिष्य और स्थविर महामोग्गलन से कहा, "मेरी इच्छा है कि आज भिक्षुओं को मीठी पूरियाँ खिलाऊँ। कंजूस मच्छरिय सेठ अपने घर की छत पर पूरियाँ बनवा रहा है। तुम ऋद्धि बल से वहाँ उसके सामने प्रगट होकर उससे पूरियाँ प्राप्त करो।"

स्थविर महामोग्गलन ने वैसा ही किया।

सेठ ने आकाश में एक भिक्षु को देखकर समझा यह पूरियाँ माँगेगा। अतः क्रोध से बोला, "आकाश में टहलने से तो क्या यदि तू खिड़की पर भी आकर खड़ा होगा तो भी तुझे कुछ न मिलेगा।"

स्थविर खिड़की पर आ खड़ा हुआ।

अब सेठ को और भी क्रोध आया वह बोला, "खिड़की पर खड़े होने से तो क्या देहली पर आने से भी तुझे कुछ न मिलेगा।"

स्थविर चट-से देहली पर जा खड़ा हुआ।

इसी समय सारे घर में धुआँ भर गया। सेठ हवेली में आग लगने के भय से घबड़ा उठा और सेठानी से बोला, "अरी देख, ये भिक्षु जादू जानते हैं, इनसे पीछा छुड़ाने के लिये एक छोटी-सी पूरी पकाकर इसे दे दे।"

सेठानी ने पूरी पकाई पर सेठ को लगा कि वह बहुत बड़ी है। अतः उसने उससे भी छोटी पकाने को कहा। सेठानी पूरी पकाती थी पर सेठ को वह बहुत बड़ी मालूम होती थी, इसी प्रकार बहुत-सी पूरियाँ बन गईं।

सेठ ने खीझकर कहा, "भद्रे दे दे इसे इन्हीं में से एक पूरी और बिदा कर दे।"

सेठानी ने ज्योंही पूरियों को हाथ लगाया तो मालूम हुआ कि वे सब एक में एक चिपकी हुई हैं और छुड़ाने से भो नहीं छूटतीं। सेठ ने कहा, "मैं पृथक करता हूँ।" सेठ और सेठानी ने मिलकर बहुत यत्न किया पर पूरियाँ अलग न की जासकीं। सेठ ने अत्यन्त दुखी होकर कहा, "मुझे भूख नहीं है तू ये सब पूरियाँ इस भिक्षु को देकर बिदा कर दे।"

सेठानी टोकरी लेकर स्थविर के समीप गई। उस समय उस विद्वान भिक्षु ने उसे धर्म और ज्ञान की कुछ बातें बताईं। सेठ ने भी उस उपदेश को सुना। यह जानकर कि भगवान आज उसकी पूरियों की प्रतीक्षा में बैठे हैं उसे बड़ी ग्लानि हुई। वह पत्नी सहित पूरियों की वह टोकरी और अन्य खाद्य सामग्री लेकर वह भगवान बुद्ध की सेवा में उपस्थित हुआ।

समस्त भिक्षुओं के भोजन कर चुकने पर भगवान ने कहा, "इस सेठ का उद्धार मोग्गलन ने आज प्रथम बार नहीं किया है। पूर्व जन्म में भी इन्होंने ऐसा ही किया था।" भिक्षुओं की जिज्ञासा शान्त करने के लिये उन्होंने पूर्व जन्म की कथा इस प्रकार सुनाई।

अतीत कथा

पूर्व काल में वाराणसी में इल्लीस नामक एक परम कृपण वैश्य रहता था। उसके मन में तरह-तरह के भोग भोगने की इच्छा उत्पन्न होती थी परंतु वह धन खर्च होने के डर से मन मारकर रहता था और सूखता जाता था।

एक दिन उसने एक व्यक्ति को प्याले में शराब डालकर पीते देखा और उसकी भी इच्छा शराब पीने की हुई। परन्तु धन खर्च होगा और बहुत-से मुफ्त के पीनेवाले आजुड़ेंगे, ऐसा सोच वह चुप रह गया। शाम को उसने नौकर से चुपके-से अपने पीने भर को शराब मँगाई। किसी को पता न लगे इस भय से वह शराब को छिपाकर बस्ती के बाहर एक झाड़ी में ले जाकर पीने लगा। वहाँ उसे नशा हो आया और वह बड़ी देर तक वहीं पड़ा रहा।

इस कंजूस इल्लीस सेठ का पिता बड़ा धर्मात्मा था। मरने पर उसे इंद्र पद प्राप्त हुआ था। अपने पुत्र के द्वारा अपनी कीर्ति का नाश होते देख उसे बड़ी चिन्ता हुई। वह उसे घर से अनुपस्थित जान, उसी का रूप बनाकर राजा के पास गया। राजा ने उसे इल्लीस समझकर उसका सत्कार किया। सेठ ने निवेदन किया कि "महाराज मेरा सब धन लेकर अच्छे कार्यों में लगाएँ।" परन्तु राजा ने उसका प्रस्ताव स्वीकार न किया। अंत में उसने कहा, "तो मुझे अपनी सम्पत्ति दान करने की अनुमति दीजिए।"

राजा ने कहा, "तुम ऐसा कर सकते हो।"

घर आकर उसने इल्लीस की पत्नी से परामर्श किया। अपने पति की धर्म में रुचि देख वह बहुत प्रसन्न हुई। नगर में घोषणा कर दी गई कि इल्लीस सेठ अपनी समस्त सम्पत्ति दान कर रहा है। सेठ के द्वार पर भीड़ इकट्ठी होगई। खजाने और भंडार खोल दिये गए। जिससे जितना बन पड़ता था लेकर जारहा था।

एक व्यक्ति सेठ के रथ-बैल लेकर अपार सम्पत्ति सहित राज मार्ग पर जारहा था। इसी समय इल्लीस घर लौटकर आरहा था। उसने रथ को रोका और कहा, "मेरी अनुमति के बिना मेरी कोई वस्तु ले जाने का तुम्हें क्या अधिकार है?"

उस व्यक्ति ने धक्का मार कर उसे गिरा दिया और कहा, "आज हमारा सेठ अपनी सारी सम्पत्ति दान कर रहा है, तू उसमें बाधक क्यों हो रहा है?"

इल्लीस सेठ की समझ में कुछ न आया। घर आने पर मालूम हुआ कि कोई दूसरा व्यक्ति इल्लीस बनकर उसकी सम्पत्ति लुटाए दे रहा है। वह बड़ा दुखी हुआ और राजा के पास जाकर कहा, "महाराज असली इल्लीस तो मैं हूँ।"

राजा ने कहा, "कोई तुम्हें पहचानता है?"

"क्यों नहीं, ? मेरी पत्नी तथा सब घर वाले पहचानते हैं।" यह कह सेठ ने सबको बुलवाया। दूसरा इल्लीस भी बुलवाया गया।

राजा ने लोगों से पूछा, "इन दोनों में से तुम किसे असली इल्लीस समझते हो?"

इल्लीस की पत्नी तुरन्त जाकर इन्द्र की बगल में खड़ी होगई और बोली, "क्या मैं अपने धर्मात्मा पति को भी नहीं पहचानती ?" अन्य लोगों ने भी वैसा ही किया।

इल्लीस घबड़ा गया और सोच में पड़ गया। उसे याद आया कि उसके सिर में एक छोटो-सी फुन्सी है जिसका हाल सिवा नाई के और किसी को नहीं मालूम था। उसने राजा से निवेदन किया, "महाराज ये सब लोग पहचानने में भूल कर सकते हैं परन्तु मेरा नाई कभी भूल नहीं कर सकता।"

इन्द्र ने सब रहस्य समझकर अपने सिर में भी उसी प्रकार की एक फुन्सी उगाली। नाई ने दोनों को ध्यान से देखा और कहा, "इन दोनों में कोई अन्तर नहीं है।" नाई की यही बात उपरोक्त गाथा में दी हुई है।

नाई की बात सुन इल्लीस मूर्छित होकर भूमि पर गिर-पड़ा। इसी समय इंद्र ने अपने को प्रगट करके सब रहस्य खोल दिया। चेतना होने पर इल्लीस ने पिता को प्रणाम किया और उनके आदेशानुसार चलने का वचन दिया।

भगवान बुद्ध ने कहा, इंद्र मोग्गलायन है, इल्लीस मच्छ-रिय सेठ है और नाई तो मैं ही हूँ।

◆◆◆◆◆

१०

कूट वाणिज जातक

गाथा

[पण्डित नाम ही अच्छा है, अति पण्डित नहीं। मेरे इस बेटे ने अति पण्डित होकर मुझे लगभग भस्म ही कर डाला था।]

वर्तमान कथा

श्रावस्ती में दो व्यापारी रहते थे। दोनों ने समान पूंजी लगाकर वाणिज्य किया और खूब धन कमाया। जब उस धन के बटवारे का प्रश्न उठा तब एक की नीयत बिगड़ गई। वह अपने लिये अधिक भाग चाहता था। दोनों भगवान बुद्ध की सेवा में उपस्थित हुए। उनकी बातें सुनकर भगवान ने कहा :-

यह वणिक अपने को इसी जन्म में अति चतुर समझता है ऐसा नहीं है। इस से पूर्व भी यह ऐसा ही कर चुका है। लोगों के पूछने पर उन्होंने पिछले जन्म की कथा इस प्रकार सुनाई।

अतीत कथा

एक बार वोधिसत्व का जन्म बाराणसी में एक बनिए के घर में हुआ। लक्षण देखकर विद्वानों ने उसका नाम पण्डित रखा। बड़े होने पर उन्होंने एक दूसरे बनिए को अपना साझीदार बनाकर वाणिज्य आरम्भ किया। इस दूसरे बनिए

कूट वाणिज जातक---

वृक्ष के खोखले में घास-फूस भर कर आग लगादी गई। बेचारा बूढा एकदम घबराकर उस खोखले का घास-फूस हटा कर अधजले हाथ-पावों से नीचे गिरा।

(पृष्ठ ४७)

का नाम था अतिपण्डित। वाणिज्य में खूब लाभ होने पर धन के बटवारे का प्रश्न उपस्थित हुआ। पण्डित ने कहा "जो कुछ भी है उसे दो बराबर भागों में बाँटलो क्योंकि हम दोनों का मूल-धन समान है और हमने काम भी समान रूप से ही किया है।" परन्तु अति पण्डित इस तर्क को स्वीकार न करता था। वह कहता था "यदि दोनों को बराबर-बराबर मिला तो पण्डित और अति पण्डित में भेद ही क्या रहा ? मैं अति पण्डित हूँ इसीलिये मुझे पण्डित से दूना मिलना उचित है।" विवाद चलता रहा और कोई निर्णय न हो सका।

अति पण्डित ने घर आकर अपने वृद्ध पिता को सलाह दी "देखिये पिताजी, मैं आपको एक वृक्ष के खोखले में बिठा दूंगा। जब मैं उस पण्डित को लेकर वृक्ष के नीचे आकर पुकारूँ, "हे वृक्ष देव, पंडित और अति पंडित में धन का बटवारा किस प्रकार होना उचित है तब आप स्वर बदल कर कहना कि अति पण्डित को पण्डित से दूना मिलना उचित है।" पिता भी लोभी था। पुत्र के प्रस्ताव को उसने स्वीकार कर लिया और वृक्ष के खोखले में छिपकर बैठ गया।

इधर अति पंडित ने जाकर पंडित से कहा, "भाई देख इस गाँव के बाहर एक वृक्ष देवता है जो सदा उचित ही बात बताता है। क्यों न हम अपने झगड़े का निर्णय उसी से करालें ?"

पंडित को वृक्ष देवता की बात पर विश्वास न था परंतु इस विषय में उसे कुतूहल अवश्य था। इसी से उसने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया।

नगर में समाचार फैल गया। वृक्ष देवता का चमत्कार देखने को बहुत-से लोग एकत्र होगए। वृक्ष के नीचे खड़े होकर अति पंडित ने कहा, "हे वृक्ष देव, मेरा नाम अति पंडित है मैं वाणिज्य करता हूँ जिसमें पंडित नाम का एक साझी-दार है। कृपा कर यह निर्णय कर दिजिये कि हम दोनों में धन का बटवारा किस प्रकार हो ?"

थोड़ी देर सन्नाटा रहा उसके पश्चात् वृक्ष में से मनुष्य-कण्ठ का-सा शब्द हुआ।

"हे नगर वासियो, तुम्हें आपस में लड़ना नहीं चाहिए और जिसका जो भाग हो उसे देने में हीला-हवाला नहीं करना चाहिए। मैं निर्णय देता हूँ कि पण्डित को एक भाग तथा अति पण्डित को दो भाग मिलना चाहिए।"

वृक्ष को मनुष्य की भाँति बोलते देख बहुत-से लोगों को आश्चर्य हुआ। पण्डित ने कहा, "यदि यह देवता का निर्णय है तो मुझे स्वीकार करने में कोई आपत्ति न होगी। परन्तु बोलने वाला देवता है या मनुष्य इसका निर्णय वृक्ष में आग लगाकर करवाऊँगा। देखते-देखते वृक्ष के खोखले में घास फूस भरकर आग लगा दी गई। बिचारा बूढ़ा एकदम घबड़ा-कर उस खोखले का घास-फूस हटाकर अधजले हाथ पाँवों से नीचे गिरा। इस प्रकार अति पण्डित द्वारा अपने साथी को ठगने का प्रयास विफल हुआ।

अति पण्डित के पिता ने जो कुछ कहा उसी का वर्णन उपरोक्त गाथा में है।

◆◆◆◆◆

११

एक पन्न जातक

गाथा

[जब इस छोटे-से पौधे में इतना विष है तो बड़ा वृक्ष बनने पर इसकी क्या अवस्था होगी ।]

वर्तमान कथा

भगवान बुद्ध के समय में वैशाली एक छोटा-सा परन्तु अति सम्पन्न गणराज्य था। यह विदेशी व्यापार का केन्द्र था। राज्य का प्रबन्ध लिच्छवि वंशीय राजकुमारों की सभा करती थी जिसका गणनायक चुन लिया जाता था। भगवान बुद्ध के समय में यहाँ ७७०७ राजपुत्र निवास करते थे। इन राजकुमारों में एक अति क्रूर स्वभाव का राजपुत्र भी था, जिसे सुधारने के सब उपाय व्यर्थ हो चुके थे। अंत में लोग उसे लेकर भगवान बुद्ध के समीप आए। भगवान ने उसे उपदेश दिया, जिससे उसका स्वभाव अत्यंत कोमल होगया। आश्रम में लोग चर्चा करते थे कि हाथियों, घोड़ों और बैलों को सिखाने वाले तो बहुत हैं परन्तु मनुष्यों को सिखाने वाला भगवान बुद्ध के अतिरिक्त दूसरा नहीं है।

जब भगवान के समक्ष यह बात आई तो उन्होंने कहा, "हे भिक्षुओ ! मेरे उपदेश ने राजकुमार को प्रथम बार ही

नहीं जीता है। इससे पूर्व भी ऐसा हो चुका है।" ऐसा कहकर उन्होंने नीचे लिखी कहानी सुनाई।

अतीत कथा

एक बार जब काशी में ब्रह्मदत्त राज्य करता था, उस समय बोधिसत्व का जन्म उत्तर के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ। सयाने होने पर उन्होंने तक्षशिला में वेद-शास्त्रों का अध्ययन किया। पिता के देहान्त के उपरांत बोधिसत्व ने घर-बार छोड़ दिया और हिमालय पर्वत पर तप करके विश्व के रहस्यों का ज्ञान प्राप्त किया। बहुत दिन पश्चात् वे जन-पथ की ओर लौटे और काशी के राजा के उद्यान में अतिथि के रूप में रहने लगे।

राजा बोधिसत्व पर बहुत श्रद्धा रखता था और दिन में कई बार उनके दर्शनों को उद्यान में आता था।

इस राजा के एक पुत्र था, जो स्वभाव से अत्यन्त क्रूर था और उसके व्यवहार से सभी दुखी थे। राजा को इस पुत्र के विषय में बड़ी चिन्ता थी। अंत में उन्होंने उसे बोधिसत्व की सेवा में रख दिया।

एक दिन बोधिसत्व राजकुमार के साथ उद्यान में टहल रहे थे। मार्ग में एक छोटा-सा नीम का अंकुर उन्हें दिखाई दिया। बोधिसत्व उसके पास ठहर गए। उस में केवल दो पत्तियाँ ही फूटी थीं। बोधिसत्व ने राजकुमार से कहा, "जरा इसकी पत्ती चखकर तो देखो।" राजकुमार ने एक पत्ती

तोड़ कर चखी और उसकी असह्य कड़वाहट के कारण उसे तुरंत ही थूक दिया। परन्तु थूक देने पर भी उसकी कटुता का प्रभाव मुख से न गया। बोधिसत्व के पूछने पर राजकुमार ने कहा, "हे सन्यासिन्, इस नन्हें से पौधे में बहुत विष है। बड़ा होने पर यह एक भयंकर विषवृक्ष बनेगा।" ऐसा कहकर उसने उस पौधे को जड़ से उखाड़कर एक ओर फेंक दिया और उपरोक्त गाथा कही।

बोधिसत्व ने कहा, "एक छोटा-सा पौधा कहीं बढ़कर भयंकर विष वृक्ष न बन जाय इस आशंका से तुमने उसे नष्ट कर डाला। क्या इसी प्रकार इस राज्य की प्रजा इस आशंका से, कि तुम राजा बनकर अपने क्रोध और क्रूर स्वभाव से उसे त्रस्त करोगे, तुम्हें राज्य से वंचित नहीं कर सकती? इस घटना से तुम शिक्षा ग्रहण करो और अपने को एक दयालु और लोक हितैषी राजकुमार सिद्ध करो।"

बोधिसत्व के उपदेश ने उस क्रूर-कर्मा राजकुमार के जीवन को एकदम बदल दिया। पिता का राज्य प्राप्त होने पर उसने लोक हित के अनेक कार्य किये जिससे काशी की सारी प्रजा उसे प्राणों के समान प्यार करने लगी। उस समय यह लिच्छवि राजकुमार ही क्रूर राजपुत्र था, आनन्द काशी का राजा था और मैं तो संन्यासी था ही।

◆◆◇◆◆

१२
संजीव जातक

गाथा

[दुष्ट से मित्रता करो, विपत्ति में उसकी सहायता करो परंतु उस सिंह के समान, जिसे संजीव ने पुनरुज्जीवित किया था, वह तुम्हारे उपकारों और कष्टों को भुलाकर तुम्हारा भक्षण कर जायगा ।]

वर्तमान कथा

मगध का राजा अजात-शत्रु बडा क्रूरस्वभाव था। वह भगवान बुद्ध के कट्टर विरोधी देवदत्त का भक्त था। देवदत्त ऊपर से साधु था परन्तु उसका मन सदा नीच कर्मों की ओर ही दौड़ता था। देवदत्त की सलाह से अजात-शत्रु ने अपने पिता का वध कर डाला। जब देवदत्त की मृत्यु का समाचार उसे मिला तो राजा एकदम घबड़ा गया। अब उसे अपने किये हुए पापों का भयंकर रूप प्रत्यक्ष दिखाई देने लगा। प्रजा यद्यपि राजा से डरती थी फिर भी हृदय से उसका आदर नहीं करती थी। एक दिन उसने अपने मंत्रियों से कहा, "मुझे एक ऐसे गुरू की बड़ी आवश्यकता है जो मुझे समय पर उचित और अनुचित का बोध करा सके और अन्याय करने से रोक सके।" मंत्रियों में बहुत-से देवदत्त के ही समर्थक थे। उन्होंने तत्कालीन विद्वान, पुराणकश्यप मक्खलि घोशाल,

अजित-केश-कम्बल, काकायन, संजय बेलाढिपुत्र तथा निगंठनाथ पुत्र के नाम लिये। प्रधान मन्त्री जीवक जरा गंभीर स्वभाव का व्यक्ति था। वह चुप ही रहा। जब राजा ने उससे अपना मत प्रगट करने का अग्रह किया तब जीवक ने कहा, "हे राजन्, इस समय भगवान बुद्ध मेरे आम्रकुंज में अपने तेरह सौ भिक्षुओं के साथ ठहरे हुए हैं। मेरा विचार है कि इस समय आपको उनके उपदेशों के सिवा अन्य किसी व्यक्ति के पास शान्ति नहीं मिलेगी। अजात-शत्रु अपने पूर्व जीवन पर पश्चा-त्ताप कर रहा था। वह अब उस पुराने मार्ग पर चलता रहना नहीं चाहता था। उसने जीवक के प्रस्ताव का स्वागत किया और भिक्षुओं के लिये उपयुक्त भेंट लेकर भगवान बुद्ध की सेवा में आम्रकुञ्ज में उपस्थित हुआ। वहाँ भिक्षुओं के सरल पवित्र आचरणों का तथा बुद्ध के उपदेशों का उस पर बहुत प्रभाव पड़ा और वह बुद्ध का अनुगत होगया। एक बार भिक्षुओं में चर्चा चलो कि देवदत्त के द्वारा राजा को कितना पथभ्रष्ट किया गया। तब भगवान बुद्ध ने कहा, "अजात-शत्रु ने इसी जन्म में भूल नहीं की है इससे पूर्व भी उसने भयकर भूल की थी।" ऐसा कहकर उन्होंने पूर्व जन्म की एक कथा इस प्रकार सुनाई :–

अतीत कथा

एक बार जब बनारस में ब्रह्मदत्त राज्य करता था उस समय बोधिसत्व का जन्म एक धनी ब्राह्मण के घर हुआ। सयाने होने पर उन्होंने तक्षशिला में जाकर वेदों और शास्त्रों

का अध्ययन किया। बनारस आकर उन्होंने अपना एक विद्यापीठ खोला जहाँ ५०० ब्रह्मचारी भिन्न-भिन्न विषयों का अध्ययन करते थे। एक विद्यार्थी की जिज्ञासा पर बोधिसत्व ने उसे मृतक संजीविनी विद्या सिखा दी। इस विद्या को सीखने से उसका नाम ही संजीव पड़ गया।

एक दिन कुछ अन्य आश्रमवासियों के साथ संजीव बन में लकड़ी लाने गया था। वहाँ उसे एक मरा हुआ सिंह दिखाई दिया। संजीव अपनी विद्या का प्रयोग करने की प्रबल लालसा को रोक न सका। उसने अपने साथियों से कहा, "देखो मैं अभी अपनी विद्या के द्वारा इस मरे हुए सिंह को जीवित किये देता हूँ।" उसके साथी संजीव के इस चमत्कार पूर्ण कार्य को देखना चाहते थे परंतु इस डर से कि कहीं जीवित होकर सिंह उन्हीं पर आक्रमण न कर दे वे कुछ दूर पर पेड़ों पर चढ़कर संजीव की विद्या का चमत्कार देखने लगे।

संजीव ने मन्त्रों का उच्चारण किया, एक डंडे से सिंह के शरीर को छुआ और कुछ और प्रयोग किये। धीरे-धीरे सिंह में चेतना आगई। वह एक अँगड़ाई लेकर उठ बैठा। संजीव अपनी विद्या की सफलता पर बड़ा प्रसन्न था। उसने सिंह के शरीर पर हाथ फेरा, परन्तु सिंह भूखा था। उसने भयंकर गर्जना की और संजीव को अपने मुख में दाब कर मार डाला।

जब शिष्य गण लकड़ी लेकर आश्रम में आए तब उन्होंने

बोधिसत्व से सब वृत्तान्त कहा। उस समय बोधिसत्व ने उप-रोक्त गाथा कही।

अंत में भगवान बुद्ध ने कहा, "अजात-शत्रु ही पूर्व जन्म में संजीव था और इसने तब भी भयंकर भूल की थी।"

◆◆◆◆◆

१३
राजोवाद जातक

गाथा

[राजा मल्लिक दुष्ट के साथ दुष्टता का बर्ताव करता है, विनम्र को अपनी नम्रता से वश में करता है, भले को अपनी नेकी से प्रभावित करता है और पापी का ऋण उसी के सिक्कों में चुकाता है। ऐ सारथी मार्ग छोड़ दे। हमारे राजा का यही तरीका है।]

वर्तमान कथा

एक दिन कोशल के महाराज को भगवान बुद्ध की सेवा में उपस्थित होने में बहुत देर होगई। भगवान के कारण पूछने पर उसने बताया, "आज एक बहुत पेचीदा मामले का फैसला करना पड़ा जिसमें बहुत समय लग गया, दरबार से उठकर शीघ्रता पूर्वक भोजनादि से निबटकर गीले हाथों ही मैं चला आया हूँ।"

भगवान ने कहा, "हे राजन्! किसी मामले पर न्याय पूर्वक तथा निष्पक्षपात होकर विचार करना ही उचित है। ऐसा करने से ही स्वर्ग का मार्ग खुलता है।" जब तुम मुझ जैसे सर्वज्ञ का परामर्श प्रथम ही प्राप्त करते हो तो यदि तुम्हारा निर्णय उचित और न्यायपूर्ण होता है तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। आश्चर्य तो तब होता है जब राजा के परा-

मर्श दाता विद्वान होते हुए भी सर्वज्ञ नहीं होते, और फिर भी वह चार प्रकार की धूर्तताओं से बचकर और दश शीलों का पालन करते हुए उचित और न्यायपूर्ण निर्णय देता है और राज्य करने के पश्चात् स्वर्ग का अधिकारी होता है।" राजा के जिज्ञासा करने पर भगवान ने पूर्व जन्म की कथा इस प्रकार कही।

अतीत कथा

एक बार काशी के राजा ब्रह्मदत्त की पटरानी के गर्भ से बोधिसत्व ने जन्म ग्रहण किया। पण्डितों ने नामकरण के दिन उनका नाम ब्रह्मदत्त रखा। उनके सब संस्कार विधिपूर्वक सम्पन्न हुए। सोलह वर्ष की आयु में उन्हें शिक्षार्थ तक्षशिला भेजा गया जहाँ उन्होंने सम्पूर्ण विद्याओं और कलाओं का विधिवत अध्ययन किया। पिता की मृत्यु के पश्चात् राजकुमार ब्रह्मदत्त काशी के अधिपति हुए। राजा ब्रह्मदत्त के शासन में सब कार्य न्याय पूर्वक होते थे। मंत्री भी सदा न्याय की रक्षा का ध्यान रखते थे। थोड़े दिनों में राज्य से विग्रह का उन्मूलन होगया। राजा तथा मन्त्रियों के पास निर्णयार्थ कोई प्रसंग उपस्थित न होने पर राजा ने सोचा, शायद लोग भय के कारण मेरे सम्मुख नहीं आते। उसने प्रत्यक्ष और गुप्त रूप से जाँच कराई। सर्वत्र प्रजा राजा के न्याय-विचार की बड़ाई करती ही पाई गई। राजा को संतोष न हुआ। वह चाहता था कि कहीं से कुछ विपरीत आलोचना सुनने को मिले तो रही-सही त्रुटियों को भी दूर कर दूं। अंत में एक

दिन वह भेष बदल कर रथ पर बैठ कर राज्य से बाहर के लोगों के विचार जानने को चल पड़ा। जहाँ-जहाँ वह गया, सर्वत्र लोगों को काशी के राजा की बड़ाई ही करते पाया।

ठीक इसी समय कोशल के राजा मल्लिक के मन में भी ऐसा ही विचार उत्पन्न हुआ। वह भी अपने विषय में लोकमत जानने के विचार से भेष बदलकर अपने राज्य से बाहर निकला। संयोगवश जिस समय ब्रह्मदत्त यात्रा समाप्त कर काशी की ओर लौट रहे थे एक नदी के छोटे पुल पर उनका सामना मल्लिक से होगया। नदी का पुल छोटा था और दो रथ उस पर से किसी भी अवस्था में आमने-सामने से नहीं जा सकते थे।

कोशल राज के सारथी ने सामने वाले सिरे से आवाज लगाई, "सारथी ! मार्ग छोड़ दो। अपने रथ को एक ओर करलो।"

काशिराज के सारथी ने दूसरे सिरे से उत्तर दिया, "सारथी ! शायद तुम नहीं जानते कि इस विशाल रथ पर स्वयम् काशी के अधिपति महाराज ब्रह्मदत्त विराजमान हैं। उचित यही है कि अपने रथ को एक ओर हटाकर मार्ग दे दो।"

कोशल के सारथी ने फिर पुकार कर कहा, "सारथी हठ मत करो। यह रथ कोशल के विशाल साम्राज्य के अधीश्वर सम्राट मल्लिक का है। तुम्हें उचित है कि उनका सम्मान करो और अपना रथ एक ओर हटाकर मार्ग दे दो।"

राजोवाद जातक—

जिस समय ब्रह्मदत्त यात्रा समाप्त कर काशी की ओर लौट रहे थे एक नदी के छोटे पुल पर उनका सामना मल्लिक से हो गया ।

(पृष्ठ ५६)

काशी का सारथी सोचने लगा कि दोनों ही बड़े राज्यों के अधिपति हैं फिर निर्णय कैसे हो ? उसने सोचा वय का सम्मान होना उचित है, जो आयु में छोटा हो उसी को अपना रथ हटाना उचित होगा। परन्तु पूछने पर विदित हुआ कि दोनों राजा समवयस्क हैं। उसने राज्य विस्तार, कुल-मर्यादा, वंश-गौरव साम्पत्तिक स्थिति आदि के विषय में प्रश्न किये। परन्तु किसी भी दृष्टि से एक राजा को दूसरे से हीन कह सकना कठिन था। अंत में उसने गुणों पर से निर्णय करने की ठानी और कोशल के सारथी से कहा, "अपने राजा के गुणों का वर्णन करो।" कोशल के सारथी ने बड़े दर्प के साथ यह गाथा कही :—

"राजा मल्लिक दुष्ट के साथ दुष्टता का बर्ताव करता है, विनम्र को अपनी नम्रता से वश में करता है, भले को अपनी नेकी से प्रभावित करता है, और पापी का ऋण उसी के सिक्कों में चुकाता है। ऐ सारथी ! मार्ग छोड़ दे। हमारे राजा का यही तरीका है।"

काशी के सारथी ने कहा, "यही तुम्हारे राजा की गुणावली है ?"

कोशल के सारथी ने कहा, "हाँ।"

काशी के सारथी ने फिर कहा, "यदि इसे गुणावली मान लें तो दोष किसे कहेंगे ?"

"तो तुम इसे दोषावली ही मान लो।" कोशल के सारथी

ने खीझकर उत्तर दिया, "परन्तु अपने राजा की गुणावली के विषय में भी तो कुछ कहो" इस पर काशी के सारथी ने कहा :—

"वह क्रोध को नम्रता से जीतता है, बुराई पर भलाई के द्वारा विजय प्राप्त करता है, उदारता से कृपणता को परास्त करता है, झूठ का ऋण सत्य के सिक्कों में चुकाता है। ऐ सारथी! मार्ग छोड़ दे। हमारे राजा का यही तरीका है।"

इन शब्दों को सुनकर राजा मल्लिक सारथी सहित रथ से नीचे उतर पड़े और रथ को मोड़कर महाराज ब्रह्मदत्त के रथ को मार्ग दे दिया।

◆◆◆◆◆

१४

दूत जातक

गाथा

["हे राजा ! आपके सामने उदरदेव का दूत उपस्थित है; हे रथपति ! आप अप्रसन्न न हों; समस्त भूमंडल के समस्त मानव रात-दिन उदरदेव के सर्वग्रासी प्रभाव के ही नीचे निवास करते हैं।"]

वर्तमान कथा

जिस समय भगवान बुद्ध जेतवन में निवास करते थे, उस समय उनके आश्रम का एक भिक्षु भोगेच्छाग्रस्त हो गया था। दूसरों को अपने से अधिक सुख भोग करते देखकर उसका मन विचलित हो गया था। इच्छाओं से विचलित इस भिक्षु के विषय में भगवान ने नीचे लिखी कथा कही :—

अतीत कथा

एक बार बोधिसत्व का जन्म काशी के राजा ब्रह्मदत्त के पुत्र के रूप में हुआ। पिता के देहान्त के पश्चात् राज्याधिकार प्राप्त होने पर स्वादिष्ट भोजनों में बोधिसत्व की विशेष रुचि हुई। उनकी तृप्ति के लिये अनेक प्रकार के स्वादिष्ट भोजन हजारों रुपये के व्यय से नित्य प्रस्तुत होने

लगे। परन्तु बोधिसत्व की तृप्ति इतने से ही नहीं हो सकी। वे अपने-देव-दुर्लभ भोज्य पदार्थों का उपभोग बहुत से लोगों की उपस्थिति में करना चाहते थे। अतः एक भव्य भोजशाला का निर्माण किया गया, जिसमें सोने के सिंहासन पर बैठकर वे हजारों मनुष्यां के सामने उन सुस्वादु और परम सुगन्धित खाद्य पदार्थों का उपभोग करते थे।

एक दिन बोधिसत्व के भोजन के समय मसालों की सुगधि से विचलित हो एक ब्राह्मण अपने को न रोक सका और साहस पूर्वक "दूत-दूत" चिल्लाता हुआ उनके निकट जा पहुँचा। उन दिनों के राज-नियमों के अनुसार दूत का मार्ग रोकना वर्जित था। इसी से रक्षकों ने उसे वहाँ तक जाने दिया। निकट पहुँचते ही उस लालची ब्राह्मण ने बोधिसत्व के थाल में से उठा-उठाकर पदार्थों को खाना आरम्भ कर दिया। रक्षक खड्ग खींचकर उसका बध करने को दौड़े। परन्तु बोधिसत्व ने मना कर दिया।

जब ब्राह्मण भोजन कर चुका और हाथ मुँह धोकर निश्चित हुआ, उस समय पान सुपारी ग्रहण कर लेने के पश्चात् बोधिसत्व ने पूछा, "हे दूत! तुम कहाँ से पधारे हो और क्या संदेश लाए हो? निर्भय होकर कहो।"

ब्राह्मण ने कहा; "राजन्! मैं वासना और उदर का दूत हूँ। वासना की प्रेरणा से ही मैं उनका दूत बनकर यहाँ तक आया हूँ।" इतना कहकर उसने उपरोक्त गाथा कही।

उसकी बात सुन राजा ने कहा, "तुम ठीक कहते हो ब्राह्मण ! उदर के दूत वासना की प्रेरणा से ही इधर-उधर जाते हैं। अपनी बात तुमने बड़े सुन्दर ढंग से कही है।" इस प्रकार प्रसन्न होकर बोधिसत्व ने भी एक गाथा प्रस्तुत की:—

"हे विप्र ! मैं एक सहस्र रक्त वर्ण की गाएँ दान करता हूँ और उनकी पूर्ति के हेतु आवश्यक साँड़ भी। जिससे एक दूत दूसरे दूत की आवश्यकता की पूर्ति कर सके क्योंकि समस्त जीव ही उदर देव के दूत हैं।"

ब्राह्मण की उक्ति से राजा बहुत ही प्रभावित हुआ और दानमान से उसे संतुष्ट कर विदा किया।

◆◆◆◆◆

१५
पदुम जातक

गाथा

१–["बार-बा र कट छँट कर भी मूँछें और दाढियाँ फिर उग आती हैं, तुम्हारी नाक भी इसी भांति फिर से उग आयेगी, कृपया हमें एक कमल-पुष्प प्रदान कीजिये ।"]

२–["हेमन्त में बीज बोए जाते हैं, जो बहुत दिनों बाद अंकुरित होते हैं, भगवान करे तुम्हारी नाक भी इसी प्रकार उग आवे, कृपया हमें केवल एक कमल ही प्रदान कर दीजिये ।"]

वर्तमान कथा

जेतवन के प्रसिद्ध विहार के समीप भगवान के प्रसिद्ध शिष्य आनंद ने एक वृक्ष का आरोपण किया था। उन्हीं के नाम पर इस वृक्ष का नाम आनन्दवृक्ष पड़ गया। भक्तगण जो बड़ी-बड़ी यात्राएँ करके जेतवन तक आते थे। आनंदवृक्ष का भी पूजन करते थे। जेतवन श्रावस्ती के निकट ही था वहीं के कमलबाजार से ये भक्तगण पूजा के लिये कमल के फूल ले आते थे। एक बार यात्रियों ने आनंद से निवेदन किया कि उन्हें प्रयत्न करने पर भी श्रावस्ती के बाजार में फूल नहीं मिले। इस पर आनंद ने स्वयम् श्रावस्ती जाकर फूल ला दिये।

जब भगवान बुद्ध गन्धकुटी में आसन पर पधारे उस समय भिक्षुओं ने इसकी चर्चा उनसे की तो उन्होंने हँसकर कहा, "वाणी की कुशलता द्वारा कमल प्राप्त करने का यह प्रथम अवसर ही नहीं है। इससे पूर्व भी ऐसा ही हो चुका है।" ऐसा कहकर उन्होंने नीचे लिखी कथा सुनाई :—

अतीत कथा

ब्रह्मदत्त के राज्य काल में एक बार बोधिसत्व का जन्म बनारस में एक बहुत धनी व्यापारी के घर हुआ। व्यापारी के दो और भी पुत्र थे। एक दिन अवकाश का लाभ उठा वे तीनों नगर के प्रसिद्ध सरोवर से कमल-पुष्प लाने गए। उस सरोवर का रक्षक नकटा था। कमल उसी से प्राप्त करने होते थे। सबसे बड़े भाई ने नकटे के पास जा, उसे प्रसन्न करने के उद्देश्य से प्रथम गाथा कही, जिसे सुन वह बहुत बिगड़ा और उसको कमल देने से इनकार कर दिया। इसके पश्चात् दूसरे भाई ने दूसरी गाथा सुनाकर उससे कमल प्राप्त करने का प्रयत्न किया, परन्तु नकटे ने चिढ़कर उसे भी मना कर दिया। इसके पश्चात् बोधिसत्व ने उसके निकट जाकर कहा:—

"वे मूर्ख हैं, जो समझते हैं कि कमल इस प्रकार प्राप्त हो जायँगे, कोई चाहे कुछ भी कहे, परन्तु कटी नाक फिर नहीं उगेगी। देखिए, मैं आपसे सच्ची बात कहता हूँ, कृपया मुझे केवल एक कमल ही दे दीजिये।"

नकटे सरपाल ने कहा, "भाई ! तुम मुझे सच्चे मालूम होते हो, परन्तु तुम्हारे दोनों भाई तो एकदम लफंगे हैं ।"

ऐसा कहकर उसने नील कमलों का एक बड़ा गुच्छा बोधिसत्व के हाथ पर रख दिया ।

◆◆◆◆◆

१६

कक्कट जातक

गाथा

[सुनहले चंगुलों वाला जीव, जिसकी आँखें पैनी हैं, जो कीचड़ में पला है, जिसकी खोपड़ी गंजी है और हड्डियों के आवरण से आवृत्त है, उसी ने मुझे पकड़ लिया है ! मेरी करुण पुकार सुनो ! मेरी सहचरी ! मेरा साथ मत छोड़ो—क्योंकि तुम मुझ से स्नेह करती हो ।"]

वर्तमान कथा

कहा जाता है कि एक बार श्रावस्ती का एक धनी पुरुष अपनी पत्नी सहित ऋण वसूल करने के लिये गाँवों में गया था जहाँ उसे डाकुओं ने घेर लिया । उस धनी पुरुष की पत्नी परम रूपवती थी, अतः डाकुओं के सरदार ने सोचा कि वह उसके पति को मारकर उस पर अधिकार कर सकता है। परन्तु वह स्त्री मानी और पतिव्रता थी । उसने डाकू सरदार के पैरों पर गिरकर कहा, "मेरे पति के प्राणों की रक्षा कीजिए। यदि आपने उसके प्राण ले लिये तो मैं भी विष खाकर अपने प्राण दे दूंगी ।"

इस प्रकार डाकुओं से पति को छुड़ाकर वह उसे लेकर श्रावस्ती लौट गई । जेतवन के पास पहुँचने पर उन दोनों

की इच्छा हुई कि विहार में चलकर भगवान बुद्ध के भी दर्शनों का लाभ ले लें। भगवान ने पूछा, "किधर गये थे ?"

धनी पुरुष ने कहा, "ऋण वसूल करने।"

"क्या सब काम ठीक-ठीक हो गया ?" भगवान ने फिर प्रश्न किया।

धनी पुरुष ने उत्तर दिया, "भगवन् ! हमें डाकुओं ने पकड़ लिया था और मेरी हत्या करना चाहते थे, परन्तु मेरी इस पत्नी ने प्रार्थना करके मुझे मुक्त करा दिया।"

भगवान बोले, "उसने तुम्हारी ही प्राण रक्षा नहीं की है। पिछले जन्म में इसने अन्य प्राणियों की भी प्राण रक्षा की थी।" सेठ के जिज्ञासा प्रगट करने पर भगवान ने नीचे लिखी कथा सुनाई।

अतीत कथा

किसी समय में, जब काशी में महाराज ब्रह्मदत्त राज्य करते थे, हिमालय पर्वत पर एक विशाल सरोवर था। इस सरोवर में एक बहुत बड़ा केंकड़ा (कर्कट) रहता था। वह इतना बड़ा था कि अपने विशाल चंगुल से वह बड़े-बड़े हाथियों को भी पकड़कर मार डालता था। इसी कर्कट के कारण उस सरोवर का नाम भी कर्कट-सरोवर पड़ गया था। इस महा कर्कट का शरीर सोने के भाँति चमकता था, इसीलिए लोग उसे स्वर्ण-कर्कट भी कहते थे। उसके भय के मारे हाथियों ने उस सरोवर पर जाना ही छोड़ दिया था।

इसी समय वोधिसत्व हाथियों के सरदार की पत्नी के गर्भ से प्रगट हुए। इस गज-कुमार का शरीर बिशाल था और उसमें बुद्धि भी थी। धीरे-धीरे वह बड़ा हुआ और एक गज-कन्या से उसकी जोडी भी मिल गई।

तरुण गज-कुमार ने अपने गिरोह के सब हाथियों को एकत्र किया और उस स्वर्ण-कर्कट रूपी कंटक को सदा के लिये नष्ट करने का संकल्प किया। माता-पिता ने मना किया परन्तु हठी तरुण न माना और अपने साथियों और पत्नी के साथ उस सरोवर की ओर चल पड़ा। सरोवर के पास पहुंच युवा गजेन्द्र ने पूछा, "क्यों भाइयो ! कर्कट तुम पर आक्रमण करता है—तालाब में उतरते समय अथवा नहा कर लौटते समय ?"

साथियों ने बताया कि कर्कट लौटते समय ही आक्रमण करता है। तरुण गजराज ने अपने साथियों से कहा, "भाइयो ! आप सब लोग पहले सरोवर में प्रवेश करके स्नान कर आवें और जो कुछ खाने योग्य वहाँ हो उसका आहार करके वापिस लौट आवें। मैं सबके अंत में सरोवर में प्रवेश करूँगा।"

जब बोधिसत्व ने सबके लौट आने पर सरोवर में प्रवेश किया तो उश धूर्त कर्कट ने अपने विशाल चंगुल से उनको इस तरह कस लिया जैसे सुनार अपनी सँडसी से किसी छोटे-से स्वर्ण-खंड को पकड़ता है। गजराज ने भरपूर जोर लगाया परन्तु वह केंकड़ा अपने स्थान से तनिक भी न डिगा, न

उसकी पकड़ ही लेशमात्र ढीली पड़ी। धीरे-धीरे कर्कट ने अपने चंगुल को कसना और गजराज को अपनी ओर खींचना आरम्भ किया। अपनी विवशता के कारण गजराज बड़ी जोर से चिंघाड़ उठा। उस भयपूर्ण शब्द को सुनकर हाथियों का समूह डरकर भागने लगा। गजराज की पत्नी भी विचलित होकर पति की ओर देखने लगी। उस समय गजराज ने सरोवर के बीच में से पुकारकर यह गाथा कही :—

"सुनहले चंगुलों वाला जीव, जिसकी आँखें पैनी है जो कीचड़ में पला है, जिसकी खोपड़ी गंजी है और जो हड्डियों के आवरण से आवृत्त है, उसी ने मुझे पकड़ लिया है। मेरी करुण पुकार सुनो! मेरी सहचरी! मेरा साथ मत छोड़ो—क्योंकि तुम मुझसे स्नेह करती हो।"

गजपत्नी ने स्वामी के दुख और करुणा पूर्ण शब्द सुने। उसने पीछे मुड़कर कहा:—

"आप को छोड़ दूँ। कभी नहीं। प्रिय पति! आप की आयु के तीन पन पूरे हो जाने पर भी मैं आपको छोड़ नहीं सकूंगी। चारों दिशाओं में इस पृथ्वी पर कहीं भी मेरे लिए कोई इतना प्रिय नहीं है जितने तुम हो।"

इस प्रकार पति को धीरज बँधाकर उसने उस स्वर्ण कर्कट को सम्बोधन करते हुए कहा:—

"मैं जानती हूँ कि समुद्र में, गंगा और नर्मदा में जितने भी कर्कट हैं आप उन सब में श्रेष्ठ हैं और सब के

कक्कट जातक—

धीरे-धीरे कर्कट ने अपने चंगुल को कसना और गजराज को अपनी ओर खींचना आरम्भ किया।

(पृष्ठ ६८)

राजा हूं । मेरी प्रार्थना पर ध्यान दीजिए और मेरे पति को छोड़ दीजिए ।"

नारी का कण्ठ स्वर सुनकर केकड़े का हृदय पसीज गया । उसने अपने चंगुल ढीले कर दिए । पैर छूटते ही गजराज को अवसर मिला । उसने पूरे जोर से केकड़े की पीठ पर आघात किया और उसकी आँखें बाहर निकल पड़ीं । गजराज ने हर्ष ध्वनि की । उसके साथी फिर सरोवर पर लौट आए और उस केकड़े को अपने चरणों से कुचलकर पीस डाला । परंतु केकड़े के वे सोने के चंगुल नहीं टूटे । वे सरोवर के जल के साथ बहकर गंगा में और पीछे समुद्र में जा गिरे, वहाँ से दो राजकुमारों ने उन्हें प्राप्त किया । इन राजकुमारों को परास्त कर इन्द्र ने उन पर अधिकार कर लिया । आकाश में वर्षा के दिनों में जब बिजली चमकती है उस समय जो भयंकर शब्द सुनाई देता है वह इसी सोने के चंगुल का शब्द है, इन्द्र ने उसका नाम बज्र रख दिया है ।

◆◆◆◆◆

१७

बड्ढकि शूकर जातक

गाथा

"जब तुम जंगली सुअर को शिकार को जाते थे, तब सदा ही उत्तम मांस लाया करते थे; आज तुम खाली हाथ शोक ग्रस्त-से आ रहे हो, तुम्हारा वह विगत पराक्रम कहाँ गया ?"

वर्तमान कथा

कोशल के राजा प्रसेनादि की बहन मगध के राजा विम्बसार को व्याही थी जिसके दहेज में काशी के समीप के कुछ ग्राम कोशल नरेश ने अपनी बहन के 'स्नान तथा गध, शृंगार आदि के व्यय के हेतु दिए थे। विम्बसार के पुत्र अजातशत्रु ने अपने पिता का बधकर मगध राज्य पर अधिकार प्राप्त किया। कोशल राजकुमारी ने पति के वियोग से दुखी हो प्राण त्याग दिये। प्रसेनादि ने काशी के उपरोक्त ग्रामों पर अजातशत्रु का अधिकार स्वीकार नहीं किया। कई बार इस विषय को लेकर मगध और कोशल में भयंकर युद्ध हुए जिनमें कोशल को बराबर परास्त होना पड़ा।

प्रसेनादि ने मंत्रियों से परामर्श कर के जेतवन में अपने अधिकारियों को विद्वान भिक्षुओं का मत जानने को भेजा।

उस समय जेतवन में भगवान बुद्ध के दो विद्वान शिष्य धनुग्रह तिस्स तथा उत्त निवास करते थे। एक दिन रात को दोनों को नींद नहीं आई और वे आपस में इस प्रकार बातचीत करने लगे।

उत्त ने कहा, "बिचारा प्रसेनादि कितना अभागा है, प्रत्येक युद्ध में भाग्यलक्ष्मी उसके शत्रु को ही वरण करती है!"

तिस्स ने उत्तर दिया, "प्रसेनादि का घड़े के समान पेट है परंतु उसमें बुद्धि बिलकुल नहीं है। युद्ध का आयोजन करना वह जानता ही नहीं।"

उत्त ने प्रश्न किया, "आखिर उसे करना क्या चाहिए?"

तिस्स ने कहा, "भाई उत्त! युद्ध में तीन प्रकार की व्यूह रचना होती है, पद्म व्यूह, शकट व्यूह और चक्र व्यूह। यदि कोशल नरेश अपनी सेना को गुप्त रूप से दो पहाड़ी किलों में छिपाकर रखे और सामने युद्ध में अपनी दुर्बलता प्रगट करके पलायन करता हुआ मगध सेना को इन दोनों दुर्गों के बीच में ले जाकर फिर आगे और पीछे दोनों ओर से आक्रमण करदे तो वह अजातशत्रु को जीवित ही पकड़ सकता है।"

कोशल नरेश के अधिकारी गण इस बात को सुन रहे थे। उन्होंने जाकर राजा से सब वृत्तांत कहा। प्रसेनादि तिस्स के बताए अनुसार ही योजना बनाकर युद्ध किया और अजातशत्रु जीवित ही पकड़ लिया गया। अंत में विग्रह का अन्त इस प्रकार हुआ कि प्रसेनादि ने अपनी कन्या वाजिरा का विवाह अपने भांजे अजातशत्रु से कर दिया और काशी

के उपरोक्त ग्राम पुनः दहेज में समर्पित कर दिये ।

धनुग्रह तिस्स की उस दिन की बात धीरे-धीरे प्रकाश में आई और जेतवन तथा श्रावस्ती में सर्वत्र उनकी चर्चा होने लगी । भगवान् बुद्ध के समक्ष जब इस विषय की बात उपस्थित हुई तो उन्होंने कहा, "धनुग्रह तिस्स के युद्ध कौशल का यह प्रथम परिचय नहीं है इससे पूर्व भी इन्होंने ऐसा ही किया था ।" ऐसा कहकर उन्होंने पूर्व जन्म की एक कथा सुनाई :—

अतीत कथा

प्राचीन काल में, जब काशी में महाराज ब्रह्मदत्त राज्य करते थे, काशी के समीप के एक ग्राम में कुछ बढ़ई रहते थे । उनमें से एक को जंगल में लकडी काटते समय एक सुअर का बच्चा गढ़े में पड़ा मिला । वह उसे निकाल कर घर ले आया और बड़े यत्नपूर्वक उसे पालने और सिखाने लगा । धीर-धीरे वह वड़ा हुआ और उसके मुख के बाहर दो तेज़ दाँत दिखाई देने लगे । यह तरुण शूकर बहुत ही हृष्ट-पुष्ट और सौम्य स्वभाव वाला था । मांसाहारी मनुष्यों से उसकी रक्षा करने के विचार से एक दिन बढ़ई उसे फिर जंगल में छोड़ आया । वह बलवान युवा शूकर वन में घूम-घूमकर अपने रहने योग्य कन्दरा और खाने योग्य कंद, मूल, फल खोजने लगा । इसी समय उसे उसी की जाति के अनेक शूकर मिले परंतु वे सब दुखी और दुर्बल दिखाई

दिए। उसने जब उनकी विपत्ति पूछी तो उन्होंने उसे बताया कि इस वन में एक ढोंगी संन्यासी रहता है जो कहीं से एक सिंह को ले आया है। सिंह के भय से वे त्रस्त रहते हैं क्योंकि वह नित्य ही कुछ शूकरों को मारकर स्वयम् खाता है और उस संन्यासी को भी खिलाता है। बढ़ई के शूकर ने उन सब को अभयदान दिया और उन सब ने उसे अपना नेता स्वीकार कर लिया। अब सब मिलकर उस सिंह का सामना करने की युक्ति सोचने लगे।

शूकर नेता ने समस्त अनुयायियों को युद्ध कौशल सिखाया और शकट व्यूह बनाकर दुर्बल बच्चों, मादाओं और बूढ़ों को उसके मध्य में सुरक्षित करके तरुण और बलवान शूकरों को बाहर वाले भाग में नियुक्त किया। इस प्रकार वह सिंह का सामना करने को तैयार होकर उसकी प्रतीक्षा करने लगा।

ठीक समय पर सिंह आया। पर्वत के ऊपर से उसने नीचे व्यूहबद्ध शूकरों को देखा और भयंकर गर्जना किया। परन्तु जब उसने देखा कि एक भी शूकर भयभीत होकर उस व्यूह से बाहर नहीं भागा तब उसका साहस आक्रमण करने का न हुआ। सिंह को चिंताकुल खाली हाथ लौटते देख ढोंगी संन्यासी ने उपरोक्त गाथा कही जिसका उत्तर सिंह ने इस प्रकार दिया :—

"पहले मुझे देखकर शूकर समूह में भगदड़ मच जाती थी; वे अपनी कंदराओं की ओर भयभीत होकर भाग जाते थे; परंतु

जित की भाँति खड़े होकर मेरा सामना करने को उद्यत हैं ।"

ढोंगी संन्यासी ने सिंह को धिक्कारते हुए कहा, "उनसे डरने की कोई आवश्यकता नहीं है । एक भयंकर गर्जना के साथ जब तुम छलाँग भरोगे उस समय उनकी सिट्टी गुम हो जायगी और वे घबड़ाकर इधर-उधर भागने लगेगें ।"

सिंह ने अपने गुरू के उपदेशानुसार ही काम किया । वह वन में गया और एक ऊँची पहाड़ी पर से दहाड़कर छलांग भरी । पहाड़ी बहुत ऊँची थी । सिंह छलांग भरकर उसकी ढलान पर जा गिरा और लुढ़कता-पुढ़कता नीचे एक गहरे गड्ढे में जा गिरा । उसकी हड्डी पसली चूर-चूर हो गई । इसी समय शूकरों के नेता ने अपने साथियों सहित आक्रमण करके उसे [illegible] ाला । सिंह के मर जाने पर नेता ने कहा, "अब तो तुम लोग निर्भय हो गए?"

शूकरों ने कहा, "अभी कहाँ ? जब तक वह ढोंगी संन्यासी जीवित है तब तक सिंहों का आना बन्द नहीं होगा । वह फिर किसी को बुला लाएगा ।"

नेता ने कहा, "अच्छा चलो उसे भी देख लें !" सब लोग उसकी कंदरा की ओर चल पड़े ।

इधर सिंह की प्रतीक्षा करते जब बहुत देर हो गई तो ढोंगी संन्यासी बड़बड़ाता हुआ उसकी खोज में निकला । रास्ते में उसने जब शूकरों के झुण्ड को अपनी ओर आते देखा तब तो वह एक दम घबड़ा गया और दौड़कर एक अँजीर

के पेड़ पर चढ़ गया। शूकरों ने उस पेड़ को घेर लिया। अब नेता ने बताया कि अपनी खीसों से सब लोग पेड़ के आस-पास की मिट्टी खोद डालो। इससे जड़ें बाहर आ जायँगी। फिर उन जड़ों को भी दाँतों से काट डालो। इससे पेड़ कमजोर हो जायगा। इसके पश्चात् धक्का मारकर पेड़ को गिरा दो जिससे ढोंगी संन्यासी अपने आप भूमि पर गिर जायगा। सबने ऐसा ही किया और उस ढोंगी संन्यासी का वहीं अन्त हो गया।

बोधिसत्व उस समय निकट ही एक वृक्ष के खोखले में निवास करते थे। उन्होंने उस साहसी शूकर की कुशलता देखकर नीचे लिखी तीसरी गाथा कही :—

"समस्त समवेत जातियों की जय हो !

मैंने स्वयम् एक आश्चर्यजनक संगठन देखा है कि शूकरों ने एक बार संघ-शक्ति और सम्मिलित दंत-शक्ति के द्वारा वनराज केशरी को परास्त कर दिया।"

कथा के अंत में पूर्वा पर सम्बन्ध जोड़ते हुए भगवान बुद्ध ने कहा : "धनुग्रह तिस्स ही पूर्व जन्म में बढ़ई का शूकर था और मैं तो वृक्षवासी आत्मा था ही।"

◆◆◆◆◆

१८
लोहकुम्भि जातक

गाथा

निज संपति का उचित भाग में दान नहीं कर पाया,
बुरे कर्म ही किये सदा पापों में भरमाया।
सुख सम्पति दो दिन का खेल दिखाकर हुए तिरोहित,
कहाँ मुक्ति ? इस लोह कुम्भि में घोर कष्ट है पाया।

वर्तमान कथा

एक बार कौशल नरेश महाराज प्रसेनजित ने रात्रि में भयंकर चीत्कार पूर्ण शब्द सुने। इन शब्दों में केवल एक-एक अक्षर ही था और वे थे नि, हा, भा, ए। उस करुण चीत्कार ध्वनि के कारण राजा को रात भर नींद नहीं आई और वे शब्द उसके दिमाग में गूँजते रहे। प्रातःकाल होने पर राजा ने ब्राह्मणों को बुलाकर पूछा तो उन्होंने कहा, "राजन् ! यह करुण चीत्कार-ध्वनि नरक के प्राणियों की है। इसको सुनने के भयंकर परिणाम होते हैं और राज्य, शरीर और यश तीन में से एक तो अवश्य ही नष्ट होता है।"

राजा ने घबड़ाकर पूछा, "हे ब्राह्मणो ! मैं इस भयंकर शब्द को सुनकर रात-भर सो नहीं सका हूँ। इस समय भी मेरे मस्तिष्क में वे ही चार अक्षर घूम रहे हैं। इसके भयंकर परिणामों से मेरी रक्षा तुम्हें करना ही होगी।"

इस पर ब्राह्मणों ने चतुर्विध बलि विधान का महत्व बताकर कहा, "हे राजा ! प्रत्येक योनि में से चार-चार प्राणियों की बलि देना होगी ।"

राजा ने आदेश दिया और तुरन्त यज्ञ की तैयारी होने लगी । यज्ञकुण्ड के समीप बड़े-बड़े खूँटे गाड़े गए जिनमें बलि-जीव गाय, भैंस, घोड़े, हाथी, गधे, मनुष्य तथा अन्य अनेक पशु-पक्षी कीड़े और उरग आदि जीव थे ।

महारानी मल्लिका ने जब यह सब देखा तो वे घबराई हुई राजा के समीप आई और पूछा, "महाराज यह इतनी धूम-धाम किस लिये हो रही है ?"

राजा ने रानी को पास बिठाकर रात की घटना सुनाई और कहा, "ब्राह्मणों को मैंने चतुर्विध बलि विधान करने की अनुमति दे दी है उसके बिना यह अमंगल शांत नहीं होगा ।"

"परन्तु सब से बड़े ब्राह्मण से तो आपने परामर्श ही नहीं लिया ।" रानी ने हँसते हुए कहा ।

राजा ने आश्चर्य से पूछा, "सबसे बड़ा ब्राह्मण कौन ? "

रानी ने कहा, "स्वयम् भगवान् बुद्ध ।"

निदान राजा रानी सहित तथागत की सेवा में जेतवन में उपस्थित हुआ ।

राजा के मुख से सम्पूर्ण वृत्तांत सुन तथागत ने कहा, "हे राजा ! चिन्ता की कोई बात नहीं है । नरक की यातनाएँ न सह सकने के कारण कुछ लोग चीत्कार कर उठे हैं । वही शब्द तुम्हें सुनाई दिया है । यह शब्द तुमने ही प्रथम बार

नहीं सुना। इससे पूर्व भी और राजाओं ने उसे सुना है। ब्राह्मणों ने तब भी बलि विधान बताया था परन्तु बुद्धिमानों की बात मान कर उन राजाओं ने उसे रोक दिया था। जो चार अक्षर तुमने सुने हैं वे उन्हें भी सुनाई दिये थे परन्तु उनका अर्थ किसी की समझ में नहीं आया था। अन्त में प्रबुद्ध पुरुषों ने उनका अर्थ समझाकर उस हत्या विधान को रुकवा दिया था।" तथागत के समझाने से बलि रोक दी गई।

राजा के जिज्ञासा प्रगट करने पर तथागत ने नीचे लिखी कथा सुनाई।

अतीत कथा

एक बार जब काशी में ब्रह्मदत्त का राज्य था, बोधिसत्व का जन्म एक ब्राह्मण परिवार में हुआ। बड़े होने पर उन्होंने गृहस्थ जीवन त्याग कर संन्यास ले लिया और हिमालय पर्वत पर कुटी बनाकर तपस्या और योगाभ्यास करने लगे।

उस समय काशी के राजा को इसी प्रकार की चीत्कार ध्वनि सुनाई दी थी और उसने भी ये ही चार अक्षर सुने थे। ब्राह्मणों ने उस समय भी चतुर्विधि बलि विधान की व्यवस्था की थी।

बोधिसत्व को योग बल से यह सब मालूम हुआ तो इन असंख्य प्राणियों की हत्या रोकने के लिए वे योगशक्ति से तुरंत काशी जा पहुँचे और राजा को कहलाया कि उन चार

अक्षरों का अर्थ वे समझा सकते हैं। राजा हाथी पर बैठ उनकी सेवा में उपस्थित हुआ और अपनी चिन्ता का कारण निवेदन किया। बोधिसत्व ने कहा, "राजा ! पापियों को दंड देने के लिए नरक में लौहकुम्भि नामक एक यातना दी जाती है। लोहे के एक बड़े घड़े में तेल खौलता है उसी में प्राणियों को डाल दिया जाता है। उबलते हुए तेल में ये ऊपर नीचे आते जाते हैं परंतु घड़े का मुख छोटा होने से मुख तक नहीं आ पाते। हजारों वर्षों बाद जब कभी वे घड़े के मुख पर ऊपर उठ आते हैं तो चिल्ला कर अपनी पीड़ा विश्व को सुनाते हैं। जो चार अक्षर सुनाई देते हैं वास्तव में वे उनकी बातों के प्रथम अक्षर हैं; अगला अक्षर बोल सकने के पूर्व ही वे पुनः नीचे चले जाते हैं। उनकी पूरी बात आज तक किसी को सुनने को नहीं मिली परंतु योगबल से मैं उनके हृदय की बात जानता हूँ। चारों पापी जो कहना चाहते हैं वह मैं चार छंदों में तुम्हें सुनाता हूँ।

(१) नि······

निज संपति का उचित भाग मैं दान नहीं कर पाया,
बुरे कर्म ही किये सदा, नित पापों में भरमाया।
सुख-सम्पति दो दिन का खेल दिखाकर हुए तिरोहित,
कहाँ मुक्ति ! इस लौहकुम्भि में घोर कष्ट है पाया।

(२) हा······

हाय ! हाय ! दुखियों की विपदा अब मैंने पहचानी,
कोई हृदय द्रवित होगा क्या सुनकर मेरी बानी ?

बीत रहे हैं युग पर युग पर अंत कहाँ कष्टों का,
अरे नरक-यातना कभी भी होती नहीं पुरानी ।

(३) भा······

भाग्यचक्र भी कर्मों के अनुसार हमें ले जाता,
किन्तु नरक के इन कष्टों का छोर नहीं दिखपाता ।
बोए थे विष-बीज धरा पर करके जो नादानी,
आज उन्हीं कटु-गरल-फलों को रो रो कर हूँ खाता ।

(४) ए······

एक बार इस लोहकुम्भि से यदि पाऊँ छुटकारा,
एक बार यदि भाग्य मुझे दे फिर से नर-तन प्यारा ।
सच कहता हूँ करुणा के जल से मन का मल धोकर,
सत्कर्मों को अर्पित कर दूँगा मैं जीवन सारा ।

इस कथा को सुन राजा को संतोष हो गया । उसने बलि विधान रुकवा दिया और यज्ञ-कुण्ड मुँदवाकर समस्त बलि जीवों को मुक्त कर दिया ।

◆◆◆◆◆

१६

सुतन जातक

गाथा

[राजा ने उत्तम मांस के साथ पकाए गये ये चावल भेजे हैं। यदि मखदेव घर पर हो तो वह आए और इसे खाले]

वर्तमान कथा

जिस समय तथागत जेतवन में निवास करते थे उस समय एक बार उस विहार में उनके द्वारा प्रसिद्ध डाकू अंगुलिमाल के उद्धार की सर्वत्र चर्चा होती थी। अंगुलिमाल काशी के समीप प्रसिद्ध मार्ग पर यात्रियों को लूटता था तथा उन्हें अनेक प्रकार के कष्ट दिया करता था। तथागत के साथ भी उसने आरंभ में अच्छा व्यवहार नहीं किया। अंत में तथागत के उपदेश से उसे ज्ञान प्राप्त हुआ और उसने उनकी शरण ली। लोगों के जिज्ञासा करने पर भगवान ने पूर्व जन्म की कथा इस प्रकार सुनाई।

अतीत कथा

जिस समय काशी में राजा ब्रह्मदत्त राज्य करता था उस समय एक बार बोधिसत्व का जन्म एक अत्यन्त निर्धन परिवार में हुआ जहाँ उनका नाम सुतन रखा गया। सुतन

अपने माता-पिता का बड़ा भक्त था। पिता का देहान्त हो जाने पर वह बड़े परिश्रम से मेहनत मजदूरी करके अपनी वृद्धा माता की सेवा करने लगा।

राजा को शिकार का बड़ा शौक था। एक दिन वह एक मृग के पीछे जंगल में दूर तक चला गया। मृग को मार कर जब वह लौट रहा था उस समय उसे बड़ी थकान मालूम हो रही थी। वह एक वृक्ष के नीचे लेट गया और लेटते ही सो गया। जब उसकी आँख खुली तो उसने अपने सामने एक भयंकर मनुष्याकृति देखी। राजा ने उससे पूछा "तू कौन है ?"

उसने उत्तर दिया, "मैं वैश्रवण (कुबेर) का दूत, मखदेव नामक यक्ष हूँ। तुम मेरा आहार हो। आज मैं तुम्हें खाकर अपनी भूख मिटाऊँगा।"

राजा ने बिना भयभीत हुए प्रश्न किया "हे यक्ष ! तुम केवल आज के ही आहार की व्यवस्था चाहते हो अथवा नित्य के आहार की।"

यक्ष ने कहा, "मैं नित्य के आहार की व्यवस्था चाहता हूँ।"

राजा ने कहा, "अच्छा, आज तो तुम इस मृग का आहार करो। कल से मैं ऐसी व्यवस्था कर दूँगा कि एक व्यक्ति प्रति दिन एक थाल भात का लेकर तुम्हारे पास आ जाया करेगा।"

यक्ष मखदेव राजी हो गया। राजा ने नगर में आकर मंत्रियों से सलाह की। मंत्रियों ने ऐसी सलाह दी कि प्रति दिन जेलखाने से एक बन्दी चावल का थाल लेकर यक्ष के पास भेज दिया जाया करे। थोड़े दिनों में जेलखाने खाली हो गए और अब यह चिन्ता हुई कि भात लेकर कौन जाय ?

राजा को बड़ी चिन्ता हुई क्योंकि नियम भंग होने से यक्ष उसे मार डालता। परन्तु मंत्रियों ने कहा, "राजन् ! आप चिन्ता न करें। संसार में ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो अपने प्राणों से धन को अधिक महत्व देते हैं। हम नगर में एक बहुत बड़े पुरस्कार की घोषणा करेंगे।"

राजा को उक्ति पसन्द आई और एक हजार मोहरों का पुरस्कार घोषित किया गया।

सुतन की अवस्था अत्यन्त शोचनीय थी। उसे दिन भर परिश्रम करने पर भी बहुत कम मजदूरी मिलती थी। उसने सोचा, "क्यों न मैं इस धन को ले लूं ?" यह सोचकर उसने अपनी माँ से अपना विचार प्रगट किया।

उसकी माँ ने कहा, "बेटा ! तुझे खोकर मैं धन लेकर क्या करूंगी। जैसे तैसे दिन कट ही रहे हैं। आज तक जितने लोग भात लेकर गए हैं वे कोई भी जीवित नहीं लौटे हैं। मैं किसी भी अवस्था में तुझे जाने नही दे सकती।"

सुतन ने सोचा, "यक्ष शारीरिक बल में श्रेष्ठ हो सकता है

परन्तु ज्ञान बल उससे भी श्रेष्ठ है। मुझे विश्वास है कि मैं अपने ज्ञान बल से उसे परास्त करूँगा और अपने साथ ही आगे जाने वाले व्यक्तियों की भी प्राणरक्षा कर सकूंगा।"

इस प्रबल आत्म-विश्वास के साथ वह राजा के सम्मुख उपस्थित हुआ। राजा से १००० मोहरें लेकर उसने कहा, "महाराज! मुझे आप अपने सोने के पदत्राण, राज-छत्र तथा सोने के म्यान वाली तलवार भी दे दें और भोजन के लिये भात भी अपने सोने के थाल में ही परोसवाने का प्रबन्ध करदें।"

राजा ने वैसी ही व्यवस्था कर दी। मोहरें ले जाकर सुतन ने अपनी माँ को दी और कहा, "माँ! तुझे मेरी इतनी चिन्ता है परन्तु मैं आज अपने साथ ही सारी मनुष्य जाति की रक्षा का उपाय करूँगा।" ऐसा कहकर वह रोती हुई माँ को पीछे छोड़कर चल दिया। सोने के जूते, राजछत्र तथा तलवार से युक्त इस युवक को भूत, प्रेत, यक्ष कोई भी भयभीत न कर सकते थे।

यक्ष भोजन की प्रतीक्षा कर रहा था। उसने जब सुतन को आते देखा तो अपने मन मे कहा, "यह व्यक्ति तो अन्यों के समान प्रतीत नहीं होता। यह बड़े धैर्य और साहस के साथ निर्भय इधर आ रहा है। यह कैसे आश्चर्य की बात है?"

यक्ष जिस वृक्ष पर निवास करता था उसके पास पहुँच कर सुतन ने उपरोक्त गाथा कही।

यक्ष ने उसकी बात सुन कर कहा, "हे युवक, भोजन के थाल सहित मेरे निकट आओ ! तुम तथा तुम्हारे थाल का भोजन दोनों ही स्वादिष्ट हैं !"

बोधिसत्व ने उत्तर दिया, "हे यक्ष ! मैं समझता हूँ थोड़े से लाभ के लिए तुम अपनी बहुत बड़ी हानि न करोगे। यदि तुमने आज मेरा बध किया तो कल से तुम्हें भात का थाल भी नहीं मिलेगा। सुन्दर, सुगन्धित तथा स्वादिष्ट भोजन की तो कमी नहीं है परन्तु उसे यहां तक लाने वाला व्यक्ति अब नहीं मिलेगा।"

यक्ष ने सोचा, "यह युवक कहता तो ठीक है।" उसने उसकी बात मान ली और कहा, "हे सुतन ! तुमने मेरे हित की ही बात कही है। जाओ और अपनी मां को आह्लादित करो। तुम मुक्त हो।"

बोधिसत्व ने यक्ष से कहा, "हे मखदेव ! तुमने पिछले जन्म में लोगों को सताया था और उस हिन्सा के फल स्वरूप ही तुम्हें यह यक्ष जन्म मिला है। इस हिंसा को छोड़ दो जिससे भविष्य में कुछ सुधार की आशा हो।"

ऐसा कहकर उन्होंने मखदेव को साथ लेकर काशी की यात्रा की और राजा से कहकर उसे नगर के एक द्वार का रक्षक नियुक्त करा दिया। यक्ष को नित्य उत्तम स्वादिष्ट भोजन राजा की ओर से मिलता रहा परंतु इसके पश्चात् उसने कभी किसी को नहीं सताया।

कथा समाप्त कर तथागत ने कहा, "इस कथा का यक्ष यही अंगुलिमाल डाकू था। आनन्द राजा था और सुतन तो मैं स्वयम् था ही।

◆◆◆◆◆

२०

दशरथ जातक

गाथा

[लक्ष्मण और सीता दोनों उस सरोवर में प्रवेश करें,
भरत कहते हैं कि राजा दशरथ ने शरीर त्याग दिया]

वर्तमान कथा

एक बार, जब भगवान बुद्ध जेतवन में निवास करते थे, एक पुरुष को उन्होंने पिता के शोक में व्याकुल देखा। उन्होंने अपने मन में सोचा कि उपदेश देने के लिये यही समय उपयुक्त है और एक शिष्य को साथ लेकर उसके घर गए। वहाँ उन्होंने उससे उसके दुःख का कारण पूछा। उसने कहा, "मेरा पिता मुझसे बहुत ही स्नेह रखता था। उसके न रहने से अब इस संसार में मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता।"

भगवान् ने कहा, "हे भाई ! तुम इसलिये दुखी हो क्योंकि तुम्हें सुख-दुःख, जन्म-मृत्यु आदि का रहस्य नहीं मालूम। प्राचीन काल में जो लोग शरीर की आठ अवस्थाओं से परिचित होते थे वे इस प्रकार दुखी नहीं होते थे।"

उस आदमी के आग्रह करने पर भगवान ने नीचे लिखी कथा उसे उसी समय सुनाई।

अतीत कथा

एक बार बनारस में दशरथ नामक एक प्रसिद्ध राजा राज्य करते थे। उन्होंने पाप के मार्ग का त्याग कर दिया था और पवित्र जीवन व्यतीत करते थे। उनके रनिवास में १६ हजार रानियां थीं। प्रधान महिषी से उन्हें राम और लक्ष्मण नाम के दो पुत्र तथा सीता नाम की एक कन्या उत्पन्न हुई। प्रधान महिषी का देहान्त हो जाने पर उसके स्थान पर दूसरी रानी ने उस पद का भार सम्हाल लिया। इस रानी से भी राजा को भरत नामक एक पुत्र प्राप्त हुआ।

राम विद्या, गुण और शील में असाधारण व्यक्ति थे इसी से लोग उन्हें राम पण्डित भी कहा करते थे। तीनों भाइयों और सीता में परस्पर स्नेह था और वे एक दूसरे के लिये त्याग करने को सदा तयार रहते थे।

एक बार नई पटरानी से प्रसन्न होकर राजा दशरथ ने उससे बरदान माँगने को कहा। इस पर उसने कहा, "समय आने पर माँग लूँगी।" एक दिन राजा को प्रसन्न देख रानी ने कहा, "आपने मुझे वरदान देने का वचन दिया था न ?"

राजा ने कहा, "हां हां, जब तुम्हारा जी चाहे मांग सकती हो।"

रानी ने साहस करके कहा, "तो फिर मेरे पुत्र को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दीजिये न !"

राजा उसकी बात सुनकर सन्न रह गए। उन्हें उससे घृणा हो गई। उन्होंने उसे क्रोध पूर्ण नेत्रों से देखा और कहा, 'हट काली नागिन मेरे सामने से दूर हो!'

रानी चुपचाप चली गई परन्तु वह भी अपनी बात पर डटी रही। और बार-बार राजा से वरदान माँगती रही।

राजा ने दुखी होकर कहा, "मेरे लिए दोनों बड़े पुत्र अग्नि के समान तेजस्वी हैं। क्या तू उनकी मृत्यु की कामना करके अपने पुत्र को राज्य दिलाना चाहती है?"

दशरथ ने इस प्रश्न पर बहुत विचार किया। उन्होंने सोचा हो सकता है कि मेरे न रहने पर यह स्त्री और भी भयंकर षड्यन्त्र करे। अतः उन्होने ज्योतिषियों से सलाह की। ज्योतिषियों ने कहा अभी आप बारह वर्ष और जीवित रहेंगे। उसी समय उन्होंने राम और लक्ष्मण को बुलाकर एकान्त में बात की, "देखो बेटा! यहाँ रहने से तुम्हारे लिये संकट उपस्थित हो सकता है। तुम बारह वर्ष तक किसी पड़ोस के राज्य में अथवा वन में जाकर रहो। मेरी दाह क्रिया हो जाने के उपरान्त लौट आकर अपना राज्य सम्हालना।"

इस प्रकार पिता का आदेश पाकर राम लक्ष्मण वन को चल दिये; सीता ने अपने भाइयों का साथ छोड़ना उचित न समझा और वह साथ होली। राम के साथ बहुत-सी जनता भी शोक संतप्त राजधानी से बाहर आई परन्तु राम ने समझा बुझाकर सबको लौटा दिया। धीरे-धीरे

राम हिमालय पर्वत पर पहुँचे जहाँ एक सुन्दर स्थान पर उन्होंने अपने लिये कुटी बनाई और वहीं रहने लगे। यहाँ पानी और कंद-मूल-फल बहुतायत से मिल जाते थे।

राम के चले जाने पर राजा दशरथ बहुत विकल रहने लगे। शोक के कारण वे अपनी आयु के शेष १२ वर्ष पूरे न कर सके और उससे पूर्व ही उनका शरीर छूट गया।

राजा का अंतिम संस्कार हो चुकने पर रानी ने आदेश दिया कि भरत का राज्याभिषेक सम्पन्न हो। परंतु प्रजा ने कहा, "नहीं, छत्र धारण करने वाले तो वनों में निवास कर रहे हैं।"

भरत ने कहा, "आप ठीक कहते हैं। मैं वन में जाकर उन्हें लौटा लाऊँगा।"

ऐसा कहकर वे राज चिन्ह लेकर हिमालय की ओर चल पड़े। जिस समय भरत आश्रम में पहुँचे तब राम कुटिया में अकेले ही थे। लक्ष्मण और सीता आवश्यक वस्तुओं का संग्रह करने वन में गये थे। भरत ने राम को पिता की मृत्यु का समाचार सुनाया। राम गम्भीर स्वभाव के व्यक्ति थे। उन्होंने शोक के वेग को सहन किया परन्तु लक्ष्मण और सीता के आने पर सहसा यह समाचार उन्हें न सुना सके। उनके आने पर उन्होंने उन्हें सरोवर में प्रवेश करने का आदेश दिया और फिर उपरोक्त गाथा कही।

इस दुःखद समाचार को सुन लक्ष्मण और सीता मूच्छित

हो गए। लोगों ने उन्हें सरोवर से निकालकर चैतन्य किया। भरत को इस बात पर बड़ा आश्चर्य हुआ कि पिता की मृत्यु-समाचार ने राम को थोड़ा भी विचलित नहीं किया। उन्होंने साहस करके राम से पूछा। राम ने धैर्य पूर्वक नीचे लिखी गाथाएँ कहीं :—

"जब मनुष्य जोर-जोर से रोकर भी किसी को बचा नहीं सकता, तो बुद्धिमान उसके लिये अपने मन को दुखी क्यों करे।"

"कम आयु वाले बच्चे, वयस्क, बूढ़े, मूर्ख, विद्वान, धनी और निर्धन, सब का अन्त निश्चित है; इनमें से प्रत्येक को मरना होता है।"

"जैसे पके हुए फल का डाल से गिरना निश्चित है, इसी प्रकार सब प्राणियों के लिये मृत्यु भी सुनिश्चित है।"

"अतः बुद्धिमानों का कर्तव्य है कि अपने साथियों की भोजनादि की व्यवस्था करें, उनकी रक्षा करें उनकी आवश्यकतानुसार उन्हें दें और जो बचे उसे सुरक्षित रखें !"

राम पंडित का उपदेश सुन कर लोगों का शोक कम हुआ। इसके पश्चात् भरत ने पिता का राज्य राम को समर्पित करते हुए कहा, "लक्ष्मण और सीता सहित आप इसे सम्हालें।" परंतु राम ने कहा, "पिता के आदेशानुसार मैं बारह वर्ष से पूर्व राज्य नहीं ले सकता।"

"परन्तु तब तक राज्य की देख रेख कौन करेगा ?" भरत ने फिर प्रश्न किया ?

राम ने कहा, "ठीक है, मैं उसका प्रबन्ध किये देता हूँ।" ऐसा कहकर उन्होंने अपनी खड़ाऊँ भरत को देते हुए कहा, "तब तक ये पादुकाएँ काम सम्हालेंगी।"

राम की पादुकाएँ लेकर भरत काशी लौट आए। और उन्हें सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर दिया। जब कभी किसी मामले पर विचार होता था तो पादुकाएँ निर्णय देती थीं। यदि निर्णय सही होता था तो पादुकाएं शांत रहती थीं परंतु यदि निर्णय ठीक न हुआ तो दोनों पादुकाएँ ऊपर उठकर परस्पर टकरातीं और शब्द करती थीं जिसका अर्थ होता था कि तुम्हारा निर्णय ठीक नहीं है।

समय बीतने पर राम लौट आये और भरत ने राज्य उन्हें सौंप दिया। राम पंडित ने १६००० वर्ष राज्य किया और अन्त में स्वर्ग लाभ किया।

कथा समाप्त कर भगवान बुद्ध ने कहा, "इस कहानी में शुद्धोदन (बुद्ध के पिता) महाराज दशरथ थे। महामाया प्रधान महिषी (राम की माँ थीं) राहुल की माँ सीता थीं, आनन्द भरत था और राम तो मैं स्वयम् ही था।"

◆◆◆◆◆

२१

मातंग जातक

गाथा

["तू कहाँ से आया है ? तेरे वस्त्र अत्यन्त गंदे हैं, तू अत्यंत नीच है तेरी शक्ल भूत की सी है। तेरे शरीर पर फटे चीथड़े हैं, दान के लिए कुपात्र, बोल तू कौन है ?]

वर्तमान कथा

जिस समय भगवान बुद्ध जेतवन में निवास करते थे उसी समय कोशाम्बी में उदयन राज्य करता था। उदयन का एक बहुत बड़ा उद्यान था जिसमें वह कभी-कभी आकर विहार किया करता था, उदयन एक विलासी राजा था। इन्हीं दिनों पिंडोल भारद्वाज जेतवन से आकाश-पथ से जाते समय कौशाम्बी में उदयन के इसी उद्यान में विश्राम किया करते थे। एक दिन ऐसा हुआ कि उसी समय उदयन भी उद्यान में आया। उसके साथ बहुत-सी स्त्रियाँ थीं। पान, गान, नृत्यादि का आनन्द लेकर वह सो गया। उसकी परिचारिकाएँ बाग में घूमने लगीं। वहाँ उन्होंने एक संन्यासी को देखा तो उसके पास जाकर कुछ उपदेश सुनने की इच्छा भी उनकी हुई। जब वे इस प्रकार पिंडोल भारद्वाज से उपदेश सुन रही थीं उसी समय उदयन की आँख खुल गई। जब

उसे यह मालूम हुआ कि उसकी दासियाँ एक संन्यासी के पास बैठी हैं तो वह क्रोध से आग बबूला हो गया और बिना सोचे समझे उस आदरणीय भिक्षु को दुर्वचन बोलने लगा। उसने अपने नौकरों को आदेश दिया कि वे लाख चींटियों की एक बोरी उस संन्यासी पर छोड़ दें। परन्तु जब उसके आदमी ऐसा करने आए तो आश्चर्य चकित रह गए क्योंकि भारद्वाज आकाश में बहुत ऊँचे उठ गए थे और हँसते हुए जेतवन की ओर यात्रा कर रहे थे।

तथागत ने यह वृत्तान्त सुना तो कहा "उदयन ने पूर्व जन्म में भी ऐसा ही किया था।" लोगों के आग्रह पर तथागत ने पूर्व जन्म की कथा इस प्रकार कही :—

अतीत कथा

एक बार जब काशी में ब्रह्मदत्त राज्य करता था उस समय बोधिसत्व का जन्म काशी से बाहर एक चाण्डाल के घर हुआ। लोग चाण्डाल को छूते नहीं हैं उसकी सूरत देखकर भी लोग अमंगल की आशंका करते हैं। चाण्डाल बालक का नाम मातंग रखा गया। बड़ा होने पर उसकी ज्ञान भरी बातें सुनकर लोग उसे ज्ञानी मातंग कहने लगे।

काशी के एक बड़े सेठ को एक कन्या हुई जिसका नाम उसने दिट्ठ मांगलिका रखा। दिट्ठ मांगलिका बड़ी रूपवती और गुणवती थी। एक बार जब वह अपने सेवकों के साथ पालकी पर सवार होकर कहीं जा रही थी उसकी दृष्टि

मातंग पर पड़ी। उसने उसका परिचय जानना चाहा परंतु जब उसने चांडाल कहकर अपना परिचय दिया तब तो उसे क्रोध आ गया, उसने अपमान पूर्वक उसे अपने सामने से हटवा दिया। सेवकों ने मातंग को इतना पीटा कि वह मूर्च्छित हो गया। चैतन्य होने पर मातंग ने संपूर्ण स्थिति पर विचार किया। "एक लड़की धन-वैभव के बल पर अपने को मांगलिका और धनहीन को अमांगलिक समझती है।" उसने उसका गर्व चूर करने का संकल्प कर लिया।

दूसरे दिन मातंग नगर सेठ के घर के मुख्य द्वार के सामने जाकर लेट गए। एक दिन, दो दिन, तीन दिन इसी प्रकार छः दिन बीत गए। दिट्ठ मांगलिका के अतिरिक्त और कोई वस्तु लेने को वह तयार न था। अन्त में सातवें दिन सेठ ने दिट्ठ मांगलिका उसके सिपुर्द कर दी जब दिट्ठ मांगलिका ने उससे घर चलने को कहा तो मातंग ने उत्तर दिया, "तुम्हारे आदमियों ने मार मार कर मुझे अधमरा कर दिया है। में चल नहीं सकता। यदि संभव हो तो मुझे पीठ पर उठाकर ले चलो।" बिचारी दिठ्ठ मांगलिका अब क्या कर सकती थी। हजारों आदमियों के बीच से उसे अपने चांडाल पति को पीठ पर उठाकर नगर से बाहर जाना पड़ा।

बोधिसत्व ने उसे कई दिन अपने से पृथक रखा और उसकी सब व्यवस्था उच्च वर्णियों के समान करा दी।

"मैं इसे क्या दूं और किस प्रकार इसे सम्मानित करूँ," इस प्रश्न पर विचार करने के उपरांत बोधिसत्व ने

संन्यास लेने का ही निश्चय किया। उस दिट्ठ मांगलिका से कहा, "जंगल गए बिना हमारा निर्वाह नहीं हो सकता। मुझे जाना ही होगा। तुम चिन्ता मत करना।" बोधिसत्व ने बन में संन्यास ग्रहण किया और तप और अभ्यास के द्वारा एक सप्ताह में ही अष्ट सिद्धियाँ प्राप्त कर लीं। अपनी अलौकिक सिद्धि के प्रभाव से मातंग काशी से बाहर चांडालों के द्वार पर आकाश-मार्ग से उतरा। पति को इस रूप में देख कर दिट्ठ मांगलिका रोने लगी। बिचारी को चांडाल पति मिला उसका भी सुख जीवन में एक दिन न पा सकी। "आपने सन्यास क्यों ले लिया, मुझे क्यों छोड़ दिया" आदि करुण शब्दों में उसने अपने मन का दुख सुनाया।

मातंग ने कहा, "मैंने संन्यास इसीलिए लिया है कि तुम्हें पूर्व से भी अधिक ऐश्वर्य से युक्त कर दूं। क्या तुम लोगों के बीच में यह कह सकोगी कि मेरा पति मातंग नहीं महाब्रह्मा है ?"

दि० मा०—"कह सकूंगी"

मातंग—"और यदि लोग पूछें कि तुम्हारा पति कहाँ है, तो कहना ब्रह्मलोक गए हैं। पूर्णमासी को पूर्णचन्द्र को विदीर्ण कर वे यहाँ प्रगट होंगे!"

ऐसा कह कर मातंग हिमालय पर्वत पर चला गया। दिट्ठ मांगलिका को जैसा बताया गया था उसने वैसा ही लोगों से कह दिया, अब सारे नगर में इस विषय पर चर्चा होने लगी।

"अरे भाई वह तो महाब्रह्मा है।"

"हमें तो सब ढोंग मालूम होता है।"

"पूर्णमासी के दिन झूठ सच सब प्रगट हो जायगा।"

इधर पूर्णमासी के दिन बोधिसत्व ने महाब्रह्मा का रूप धारण कर चन्द्र मंडल के भीतर से प्रगट होकर अपार तेज से सब को चकित कर दिया। लोगों को विश्वास हो गया। भक्तों की भीड़ की भीड़ चांडाल-निवास की ओर भागी हुई गई और वहाँ अपने देवता के स्वागत के उपयुक्त सजावट की। इसी समय दिट्ठ मांगलिका के शरीर स बोधिसत्व के शरीर का स्पर्श हो गया और उसे गर्भ रह गया। बोधिसत्व ने कहा, "दिट्ठ मांगलिका ! तुम्हें पुत्र होगा—बड़ा गौरव शाली और ऐश्वर्यवान।" ऐसा कहकर भक्तों को उपदेश देकर वे पुनः चन्द्र मंडल में समा गए।

इधर ब्रह्मा के भक्तों ने पालकी पर दिट्ठ मांगलिका की सवारी सारे नगर में घुमाई। भक्तों ने खूब भेंट दी। करोड़ों रुपयों की सम्पत्ति इकट्ठी होगई। नगर से बाहर महल, बाग-बगीचे आदि बन गए। जिस समय दिट्ठ मांगलिका के पुत्र का जन्म हुआ उस समय उसके पास ऐश्वर्य और वैभव-किसी वस्तु की कमी न थी। पंडितों ने पुत्र का नाम मांडव्य-कुमार रखा। उसकी शिक्षा की अच्छी व्यवस्था की गई और १६ वर्ष की आयु तक पहुँचते-पहुँचते वह पूर्ण पंडित हो गया। मांडव्यकुमार को ब्राह्मणों का बड़ा ध्यान रहता था।

एक बार उसने कई हजार ब्राह्मणों को निमंत्रित करके बड़ा भारी उत्सव मनाया। बोधिसत्व के मन में आई कि चलकर दिट्ठ मांगलिका का हाल-चाल देख आएँ। अतः आकाशमार्ग से वे फटे-पुराने कपड़ों को धारण किये ही मांडव्य के महल के सामने प्रगट हुए। मांडव्यकुमार की दृष्टि इस अमंगल मूर्ति पर पड़ते ही उसने नीच, जातिभ्रष्ट, पतित, पापी आदि दुर्वचनों से उसका अपमान किया और उपरोक्त गाथा कही।

मातंग ने उसके प्रश्न के उत्तर में कहा :—

"भले आदमी, हजारों आदमी खा-पी रहे हैं। खाने की कमी नहीं है। तुम जानते हो कि हमें जो दिया जाय उसी पर गुजर करना होता है। अतः इस नीच जाति वाले को भी कुछ आपके इस भोज का आनन्द मिल जाने दो।"

मांडव्यकुमार ने कहा, "अरे नीच! यह भोजन पवित्र आचरण वाले ब्राह्मणों के लिए बना है तुझ जैसे अपवित्र व्यक्ति को कैसे मिल सकता है।"

मातंग ने फिर कहा, "यहाँ बहुत से कुपात्र भोजन कर रहे हैं। खोज करने से उनसे अच्छे पात्र मिल सकते हैं।"

निदान मांडव्य ने उसे बाहर निकाल देने का आदेश सेवकों को दिया। परन्तु उनके आने से पूर्व ही बोधिसत्व आकाश में बहुत ऊँचे उठ गये थे। ब्राह्मण तथा मांडव्यकुमार आश्चर्यचकित देखते रह गए।

बोधिसत्व नगर के पूर्व द्वार पर पहुँचे और वहाँ कुछ भिक्षा प्राप्त कर भोजन किया। इधर नगर के देवताओं में संन्यासी के अपमान से क्षोभ उत्पन्न हुआ और भूत-प्रेतादि मांडव्यकुमार के महल पर जाकर उपद्रव करने लगे। ब्राह्मणों की गर्दनें ऐंठ गईं। मांडव्यकुमार के हाथ-पैर अकड़ गए और गर्दन एकदम पीछे मुड़ गई। वह मरा नहीं परन्तु कष्ट और पीड़ा से मूर्च्छित हो गया। दिट्ठ मांगलिका को पुत्र की इस दशा का समाचार मिला तो रोती-विलाप करती वहाँ आ उपस्थित हुई। लोगों ने उसे बताया कि एक संन्यासी फटे-चीथड़े पहने यहाँ आया था। तेरे पुत्र ने उसका अपमान करके निकलवा दिया। वह आकाश मार्ग से पूर्व की ओर गया है।

दिट्ठ मांगलिका समझ गई कि वह संन्यासी सिवाय मातंग के और कोई अन्य नहीं हो सकता है। वह भागी हुई उनके समीप गई। उनके पैरों पर गिर कर पुत्र की प्राण-रक्षा को प्रार्थना की।

बोधिसत्व ने अपने कमंडल में पड़े हुए कुछ जूठे चावलों के कण देते हुए कहा, "इन्हें इनमें से कुछ अपने पुत्र के मुख में डाल दो और कुछ को पानी में मिलाकर सब ब्राह्मणों को पिला दो। सब बच जायँगे। परन्तु अपने पुत्र को समझा दो कि उसे दान करते समय जाति, वेष आदि नहीं देखना चाहिए बल्कि योग्यता के अनुसार पात्र देखकर दान देना चाहिए।" दिट्ठ मांगलिका ने ब्रह्मणों सहित पुत्र को विपत्ति से छुड़ाकर

मातंग के कहे अनुसार उपदेश दिया जिसके अनुसार वह अपने जीवन भर चलता रहा।

तथागत ने कथा समाप्त करके कहा, "पूर्व जन्म में उदयन ही मांडव्यकुमार था और मातंग तो मैं था ही।"

◆◆◆◆◆

२२

शिवि जातक

गाथा

[यदि कोई ऐसा दान है, जो मैंने अभी तक नहीं दिया है, चाहे वह नेत्रों का ही दान क्यों न हो, तो मैं दृढ़ता और निर्भयता पूर्वक उसे भी तुरन्त दे दूँगा।]

वर्तमान कथा

एक बार जब भगवान जेतवन में निवास करते थे उस समय श्रावस्ती के राजा ने ब्राह्मणों और भिक्षुओं को कई दिन तक भोजन कराया और दान देकर उन्हें संतुष्ट किया। सब लोग राजा को आशीर्वाद देकर गए परंतु तथागत बिना आशीर्वाद दिए ही चले गये। दूसरे दिन राजा भगवान के दर्शनों के लिये जेतवन में गया तब इस विषय में प्रश्न किया। तथागत ने कहा, "हे राजा, लोगों की मलिनता मिटी नहीं है वे अपवित्र ही हैं। स्वर्ग का द्वार लोभियों के लिये नहीं खुलता है।"

राजा ने तथागत को आदर पूर्वक प्रणाम किया और शिवि देश का बना एक बहुमूल्य वस्त्र उन्हें भेंट कर चला गया। दूसरे दिन विहार में उस हजारों रुपयों के मूल्य वाले अद्भुत वस्त्र की चर्चा हो रही थी। तथागत के समक्ष जब

यह विषय उपस्थित हुआ तो उन्होंने कहा, "प्राचीन काल में लोग केवल भौतिक वस्तुओं का दान कर के ही संतुष्ट न होते थे। वे अपने प्राणों को सकट में डालकर अपने शरीर के नेत्रों तक को निकालकर दान कर देते थे।

अतीत कथा

प्राचीन काल में शिवि देश में शिवराज नामक राजा राज्य करता था। बोधिसत्व का जन्म इसी शिवि कुल में एक राजकुमार के रूप में हुआ। राजकुमार शिवि ने तक्ष-शिला में रहकर विद्याध्ययन किया और वेदों का संपूर्ण ज्ञान प्राप्त कर के राजधानी को लौट आए। पिता ने उनको सब प्रकार से योग्य समझकर उन्हें एक प्रान्त का शासक नियुक्त कर दिया। कालान्तर में पिता का देहान्त हो जाने पर राजकुमार शिवि ने राज्यभार सम्हाला। तरुण राजा को दान देने में अत्यधिक आनन्द आता था। उसने अपनी राजधानी में ६ विशाल मंडपों का निर्माण कराया जहाँ वह स्वयं उपस्थित होकर दान दिया करता था। धीरे-धीरे उसकी कीर्ति सारे संसार में फैल गई।

एक दिन राजा अपने मन में सोच रहा था, "मैंने अभी तक ऐसे तमाम पदार्थों का ही दान किया है जिनके देने में स्वयम् मुझे कोई विशेष कष्ट नहीं हुआ। अब मुझे कोई असाधारण दान देना चाहिए—बाहर की वस्तुओं का नहीं, अपने शरीर का।"

उपरोक्त गाथा में राजा का यही संकल्प व्यक्त हुआ

है। धीरे-धीरे लोगों को राजा की इच्छा का पता लगा परन्तु लोग उसे बहुत चाहते थे अतः ऐसी किसी चीज को माँगने की किसी की इच्छा ही न होती थी जिससे राजा को कष्ट उठाना पड़े।

इन्द्र (शक्र) ने राजा की परीक्षा लेने की ठानी। वह अन्धे ब्राह्मण का रूप धरकर राजा के पास आया और कहा, "हे राजा मैं नेत्रहीन हूँ परन्तु तुम्हारे दो आँखें हैं यदि तुम एक मुझे दे दो तो हम दोनों एक-एक आँख से अपना काम काज चला सकते हैं।"

राजा जिस चीज की प्रतीक्षा में था वही उसे मिल गई। उसने अपने राजवैद्य को बुलाकर कहा, "मेरी एक आँख निकालकर इस ब्राह्मण के लगा दो।"

नगर के लोगों ने सुना तो सब दौड़े आए और राजा को नेत्रदान करने से रोकना चाहा पर वह अपने वचन पर दृढ़ था। अन्त में लोग शक्र को भला-बुरा कहने लगे।

वैद्य ने एक नेत्र निकालकर ब्राह्मण की आँख में बिठा दिया। इसके पश्चात् बोधिसत्व ने दूसरा नेत्र भी निकलवा कर उसकी दूसरी आँख में बिठवा दिया। इस महान त्याग से शक्र बहुत प्रभावित हुआ। उसने राजा से कहा, "हे राजा! याचना से अधिक दान देने और स्वयम् अपने को बिलकुल अंधा और दुखी बना लेने का क्या कारण है? यदि तुम यह भेद मुझे बतादो तो मैं तुम्हें तुम्हारी आँखें लौटा सकता हूँ। मैं स्वयम् इन्द्र हूँ।"

राजा ने कहा, "नेत्र लौटाने के लिए सौदा कैसा ? मेरे दान का यदि कोई महत्व है तो आप उसे ही स्वीकार कीजिए और कुछ मत पूछिए ।"

इन्द्र इस शील से और भी प्रसन्न हुआ और राजा को पुनः नेत्र प्राप्त हो गये ।

कथा सुना कर भगवान बुद्ध ने कहा, "इस कथा में आनन्द वैद्य था, अनिरुद्ध शक्र था और राजा शिवि तो मैं स्वयम् ही था ।"

◆◆◆◆◆

२३

तक्कल जातक

गाथा

[यहाँ कंद मूल नहीं है। पकाने योग्य कोई पदार्थ नहीं है। न कोई ऐसी चीज ही है जो कच्ची खाई जा सके। हे पिता ! फिर मृत्यु के मुख के समान यह बड़ा गड्ढा यहाँ क्यों है, जिसकी कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।]

वर्तमान कथा

जिस समय भगवान जेतवन में निवास करते थे उस समय श्रावस्ती के समीप एक गाँव में एक अत्यन्त गरीब परिवार रहता था, तरुण पुत्र अपने माता-पिता की सेवा में लीन रहता था और मेहनत मजदूरी करके जो कुछ लाता था उसी में सब की गुजर होती थी। जब उसकी माँ का देहान्त हो गया तो वृद्ध पिता ने कहा, "बेटा, अब तो मुझे तेरे लिये एक बहू जल्दी ही ढूँढ़नी पड़ेगी।"

युवक के मना करने पर भी वृद्ध पिता ने उसका विवाह कर डाला। बहू घर में आ गई और कुछ दिन बड़े सुख से बीते। बहू को पिता की सेवा तत्परता पूर्वक करते देख पुत्र भी उससे स्नेह करने लगा।

धीरे-धीरे बहू ने रंग बदलना आरम्भ किया। अब वह

ससुर की सेवा में लापरवाही करने लगी । कभी पानी अति गरम हो जाता तो कभी अति ठंडा । कभी शाक में नमक होता ही नहीं और कभी इतना अधिक कि खाया न जा सके। घर में जगह-जगह थूककर वह अपने पति को ससुर की गन्दगी दिखाती थी। अंत में उसने एक दिन अपने पति से कहा कि इस घर में या तो आपके पिता जी ही रहेंगे या मैं ही रहूँगी। दोनों का रहना हो नही सकता।

पति ने कहा, "मेरे पिता जी वृद्ध हैं उनके कहीं जाने का प्रश्न ही नहीं उठता है। तुम जवान हो जहाँ चाहो जा सकती हो।" पति की इस बात ने उसकी आँखें खोल दीं। उसने समझ लिया कि इस प्रकार मैं अपने पति को पिता के विरुद्ध आचरण करने के लिये तयार नहीं कर सकती। अब उसका आचरण भी फिर से ठीक हो गया और परिवार में सुख के दिन लौट आए। उस स्त्री का पति जेतवन में भगवान बुद्ध के दर्शनों को आया करता था वहीं उसने यह बात कही, भगवान ने कहा इस बार तो तूने पत्नी की बात नहीं मानी परन्तु इससे पूर्व तू एक बार उन्हें जीवित ही गाड़ देने को तयार हो गया था। लोगों के जिज्ञासा करने पर तथागत ने पूर्व जन्म की कथा इस प्रकार कही :—

अतीत कथा

जिस समय काशी में ब्रह्मदत्त राज्य करता था उसी समय काशी के निकट एक ग्राम में वशिष्ठक नामक एक तरुण

रहता था जो अपने माता पिता की सेवा में रत रहता था। उसकी माता का देहान्त हो जाने पर उसके पिता ने उसका विवाह कर दिया और बहू ने घर सम्हाल लिया। कुछ दिन बाद इस बहू से वशिष्ठक को एक पुत्र उत्पन्न हुआ जो बहुत ही समझदार था। धीरे-धीरे बहू ससुर का काम करने से जी चुराने लगी। वृद्ध पुरुष न चल सकता था न अपना कोई काम स्वयम् कर सकता था। उसे सभी कामों के लिये दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता था। पत्नी ने धीरे-धीरे पति के कानों में विष भरना आरम्भ किया। यहाँ तक कि वह भी अपने पिता को एक मुसीबत समझकर उससे छूटने की बात सोचने लगा।

एक दिन पति-पत्नी ने परामर्श किया कि बुड्ढे को मरघट में ले जाकर एक गड्ढे में बन्द कर देंगे। शाम को ही यह घोषित कर दिया गया कि एक कर्जदार कर्ज नहीं देता है; सबेरे ही पिता जो को लेकर बशिष्ठक वहाँ जायगा जिससे वह इनकार न कर सके। पिता ने सोचा कहीं मैं मर गया तो फिर रुपया उससे मिलना कठिन हो जायगा अतएव राजी हो गया।

वशिष्ठक का पुत्र इस समय सात वर्ष का हो चुका था। उसने अपने माता-पिता की गुप्त बातें सुन ली थीं। सबेरे वह मचल गया और गाड़ी पर जा बैठा।

गाँव से बाहर विश्राम के लिये पिता को एक ओर बिठा कर बशिष्ठक पेड़ों की आड़ में जाकर गड्ढा खोदने लगा,

जब गड्ढा खुद गया तो उसका पुत्र बाबा के पास से भाग कर वहाँ जा पहुँचा। उसने उस गढ़े को देखकर उपरोक्त गाथा कही।

पिता ने कहा, "हे बेटा ! तेरा बाबा अब बहुत बूढ़ा हो गया है उससे चला-फिरा नहीं जाता। उसे बहुत कष्ट है। हम उसे इस गड्ढे में रख देंगे। मृत्यु के बिना उसके कष्ट दूर नहीं हो सकते।

पुत्र ने कहा, "हे पिता ! मुझे तो यह काम ठीक नहीं मालूम होता। यह तो घोर पाप है। मनुष्य को मारकर गड्ढे में डालना वह भी अपने ही पिता को। फिर भी यदि यही परंपरा अपने कुल की है तो लाइये फावड़ा मैं भी आप के लिए एक गड्ढा अभी से तयार कर लूँ।"

पुत्र के मुख से यह बात सुनकर वशिष्ठक सन्नाटे में आ गया। उसे अपना पाप और उसके भयंकर परिणाम स्पष्ट दिखाई देने लगे। उसने बच्चे को हृदय से लगाकर कहा, "बेटा ! तेरा उपकार कभी न भूलूंगा। तूने ठीक समय पर मुझे चेता दिया नहीं तो जाने क्या हो जाता।"

घर आकर बालक ने अपने पिता को सलाह दी कि माँ यदि बाबा के साथ न रहना चाहें तो इन्हें अलग रहने दीजिये। क्रोध में भरी वशिष्ठक की पत्नी पड़ोसी के घर जाकर रहने लगी।

कुछ दिन पश्चात् बालक ने पिता से कहा, "पिता जी ! माँ को ठीक रास्ते पर लाना है।"

पिता ने कहा--"अब क्या करने को कहता है ?" "कल प्रात:काल आप गाड़ी लेकर बाहर जायेंगे । गाँव में कह दीजिये कि घर में स्त्री के बिना बड़ी तकलीफ होती है इसलिये पास के गाँव में एक रिश्तेदार के यहाँ सम्बन्ध करने जा रहा हूँ।"

बात वशिष्ठक की पत्नी के कान में पहुँची । वह घबड़ाई हुई पुत्र के पास आई और बोली, "बेटा मेरी बात तू नहीं सुनेगा तो कौन सुनेगा ।" पुत्र ने माँ को बन्दना की और कहा, "माँ ! तू स्वयम् ही अपना अधिकार छोड़कर चली गई थी । आ क्यों नहीं जाती वापिस।" इस प्रकार उस परिवार में शान्ति फिर लौट आई।

इस कथा में वशिष्ठक तो वही युवक था परन्तु बालक मैं स्वयम् था।

◆◆◆◆◆

२४

आशंका जातक

गाथा

[नन्दन कानन में आशावती नामक लता है जिसमें एक हजार वर्ष के पश्चात् फल लगते हैं। देवता उन फलों के लिये धैर्य पूर्वक प्रतीक्षा करते हैं। हे राजा ! आशा रख ! आशा का फल मधुर होता है। एक पक्षी आशा लगाए रहता है और कभी पराजय स्वीकार नहीं करता। अभीप्सित चाहे कितनी ही दूर हो परन्तु अन्त में उसे विजय अवश्य मिलती है। हे राजा ! आशा रख ! आशा का फल मधुर होता है।]

वर्तमान कथा

एक बार जब भगवान जेतवन में निवास करते थे एक भिक्षु को अपनी पत्नी की याद आई और वह विकल हो गया। तथागत को ऐसा प्रतीत हुआ कि भिक्षु पथ से विचलित हो रहा है अतः उन्होंने उसे बुलाकर कहा, "स्त्री तुम्हारे लिये हानि का कारण है। पूर्व जन्म में भी तुमने उसके लिये एक बहुत बड़ी सेना की बलि चढ़ा दी थी।" भिक्षु के पूछने पर भगवान ने पूर्व जन्म की कथा नीचे लिखे अनुसार सुनाई।

अतीत कथा

पूर्वकाल में जब काशी में ब्रह्मदत्त राज्य करता था, बोधिसत्व का जन्म एक ग्रामीण ब्राह्मण के परिवार में हुआ। बड़े होने पर उन्होंने तक्षशिला में जाकर विद्याध्ययन किया और फिर संन्यास लेकर हिमालय पर्वत पर जाकर तप और ध्यान में मग्न हो गए। उस समय तेतीस कोटि देवताओं के स्वर्ग में एक आत्मा का पतन हुआ और उसने एक सरोवर के बीच में एक कमल के भीतर कन्या रूप में जन्म लिया। बोधिसत्व प्रतिदिन उस सरोवर में स्नान करने जाते थे। उन्होंने देखा कि अन्य सब कमल मुरझा कर झड़ जाते हैं परन्तु एक नित्य बढ़ता ही रहता है। उन्होंने कौतूहल वश उसके पास जाकर देखा तो उसमें एक परम रूपवती कन्या दिखाई दी। बोधिसत्व उसे अपनी कुटी में ले आए और पुत्री की भाँति उसका पालन करने लगे।

इन्द्र ने देखा कि बोधिसत्व को कन्या के पालने में कष्ट होता होगा अतः वह उनके समीप आकर बोला, "भगवन्, मुझे क्या आदेश होता है?" बोधिसत्व ने कहा, "इस कन्या के लिये समुचित प्रबंध कर दो।" इन्द्र के आदेश से आकाश से एक सुन्दर महल नीचे उतरा जिसमें सब प्रकार के सुख साधन थे और वह कन्या उसमें रहने लगी। बोधिसत्व को कमल के विषय में आशंका होने पर ही यह कन्या मिली थी अतः उन्होंने उसका नाम आशंका रख दिया।

एक दिन एक लकड़हारा बोधिसत्व के आश्रम में दर्शनों के लिये आया। वहाँ उसने उस कन्या को देखा। यह लकड़-हारा काशी का रहने वाला था। अपने नगर में जाकर उसने राजा से सब हाल कहा। कन्या के रूप की बड़ाई सुनकर राजा सेना लेकर उसे प्राप्त करने चल पड़ा। लकड़हारे ने मार्ग बताया।

बोधिसत्व के आश्रम में जाकर राजा ने उनको प्रणाम किया। उनके साथ बात-चीत करके और उपदेश सुनकर जब राजा चलने लगा उस समय उसने बोधिसत्व से उस कन्या के विषय में पूछा। बोधिसत्व ने कहा, "वह मेरी पुत्री है।" राजा ने निवेदन किया, "हे तपस्वी ! बन में रहकर कन्याओं का पालन पोषण ठीक रीति से नहीं हो सकता है यदि इस सुकुमारी कन्या को आप मुझे देदें तो मैं इसे सब प्रकार से सुखी कर सकता हूँ।"

बोधिसत्व ने कहा, "हे राजा ! यदि तू इस कन्या का नाम जानता हो तो मुझे बता। मैं उसे तेरे हवाले कर दूंगा।"

राजा ने मंत्रियों की सलाह से सुन्दर-सुन्दर नामों की सूचियाँ प्रस्तुत कीं परन्तु बोधिसत्व ने सबको 'यह नहीं है' कहकर अमान्य कर दिया।

एक वर्ष तक राजा अपनी सेना सहित उस ठंडे बर्फीले हिमालय पर्वत पर आशा लगाए पड़ा रहा। उसके हाथी, घोड़े और बहुत से मनुष्य सरदी के कारण मर गए। कुछ को जंगली जानवर खा गये। कुछ रोग ग्रस्त हो गए और

कुछ अच्छे भोजन के अभाव से अधमरे हो गए। अब राजा एकदम निराश हो गया और वापिस लौटने की तयारी करने लगा। वह महल के नीचे इसलिए टहल रहा था कि यदि वह लड़की खिड़की से झाँके तो उसे अपने लौट जाने की बात बता दे। हुआ भी वैसा ही। जब लड़की खिड़की पर आई तो उसने अपनी यात्रा की बात उससे कही। उस समय उस लड़की ने ऊपर दी हुई गाथा सुनाई जिसे सुनकर वह फिर एक वर्ष के लिये ठहर गया।

इसी प्रकार वह तीन वर्ष तक बोधिसत्व के आश्रम में रहा। जब भी वह निराश होकर चलने की बात सोचता तभी वह लड़की उसे आशा और प्रयत्न विषयक कोई गाथा सुना देती थी और वह ठहर जाता था। इस बार वह बिलकुल निराश होगया था। हजारों नामों की सूचियाँ बना-बनाकर उसने बोधिसत्व के सामने रखीं परन्तु वे सब व्यर्थ गईं। उस लड़की का नाम जानना एक बहुत कठिन पहेली हो गया। अतः लौट जाने का निश्चय करके वह खिड़की के सामने उस लड़की से अंतिम बात कहने के लिए गया। लड़की के आने पर उसने कहा,

"मेरी सेना नष्ट हो गई है। मेरे खाद्य भंडार समाप्त हो गए हैं। मुझे आशंका है कि कहीं मेरा जीवन ही नष्ट न हो जाय। लौट जाने में ही मेरा मंगल है।"

लड़की खिड़की पर से खिल-खिलाकर हँस पड़ी। "अरे !

मेरा नाम तो तुम जानते हो। फिर इतने परेशान क्यों हो रहे हो।"

राजा ने कहा, "कहाँ ? कौन-सा नाम ?"

लड़की ने कहा, "अभी-अभी तो तुमने मेरा नाम लिया था।"

राजा ने अपने शब्दों पर ध्यान से विचार किया और समझ गया कि इस लड़की का नाम आशंका के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता। वह प्रसन्न होता हुआ बोधिसत्व के पास आया और उन्हें उनकी पुत्री का नाम बताया। बोधिसत्व ने कहा, "जिस समय तुम्हें उसका नाम मालूम होगया उसी समय से मेरे वचन के अनुसार मेरी पुत्री तुम्हें समर्पित होगई। जाओ उसे लेजाकर सुख पूर्वक जीवन व्यतीत करो।"

राजा महल में गया और थोड़ी ही देर में आशंका के साथ आकर बोधिसत्व को प्रणाम किया और उनका आशीर्वाद प्राप्त कर अपने बचे हुये साथियों के साथ काशी लौट गया।

◆◆◆◆◆

२५
घृत जातक

गाथा

[हे कृष्ण ! उठो ! आँखें बन्द करके मत सोओ ! तुम यहाँ पड़े हो और तुम्हारा सहोदर घृत वायु ग्रस्त विक्षिप्त होकर गलियों में मारा-मारा फिरता है ।]

वर्तमान कथा

एक बार एक भक्त को पुत्र शोक हुआ । तथागत ने उससे पूछा, "क्या तुम दुखी हो ?" उसने उत्तर दिया, "महाराज ! मैं बहुत दुखी हूँ ।" तब भगवान ने कहा, "पूर्व काल में लोग पुत्र शोक से दुखित होने पर बुद्धिमानों की बात ध्यान से सुनते थे और मृत पुत्र के लिये शोक करना छोड़ देते थे ।"

भक्त के प्रार्थना करने पर तथागत ने पूर्व जन्म की नीचे लिखी कथा सुनाई ।

अतीत कथा

किसी समय में उत्तरापथ के असितांजना नगर में महाकंस नामक राजा राज्य करता था । उसके कंस और उपकंस नामक दो पुत्र तथा देवगर्भा नामक एक कन्या थी । भविष्य

कथन करने वाले ज्योतिषियों ने कहा कि इस कन्या से जो पुत्र होगा वह कंस के परिवार के नाश का कारण होगा। राजा को अपनी कन्या से बहुत स्नेह था अतः उसने कन्या का वध न कराकर भविष्य का निर्णय उसके भाइयों पर ही छोड़ दिया। महाकंस के मरने पर कंस राजा हुआ और उपकंस उसके प्रतिनिधि के रूप में राज्यकार्य करने लगा। दोनों भाइयों ने सोचा कि देवगर्भा की हत्या करने से जनता में अपकीर्ति होगी अतः उन्होंने निश्चय किया कि उसे आजन्म अविवाहिता रखा जाय तथा किसी पुरुष से उसे मिलने न दिया जाय। इस योजना के अनुसार देवगर्भा को एक पृथक भवन में कड़े पहरे में रख दिया गया तथा उसकी परिचर्या के लिये नन्दगोपा नाम की एक दासी और उसके पति अंधक-वेणु को भी उसी भवन में रखा गया। अंधकवेणु को आदेश था कि वह किसी अन्य पुरुष को भवन में न आने दे।

उसी समय मथुरा प्रदेश के उत्तरी भाग में महासागर नामक राजा राज्य करता था। उसके सागर और उपसागर नामक दो पुत्र थे। पिता की मृत्यु के पश्चात् सागर राजा हुआ और उपसागर उसके प्रतिनिधि रूप में कार्य करने लगा। उपसागर और उपकंस में मित्रता थी। दोनों ने साथ-साथ एक हीं गुरु के आश्रम में विद्याध्ययन किया था। किसी कारण वश सागर अपने छोटे भाई के आचरण से असंतुष्ट होगया और उपसागर भागकर अपने मित्र उपकंस के पास चला आया। कंस और उपकंस ने उसे बड़े सम्मान के साथ

अपने यहाँ रख लिया। उपसागर को जब देवगर्भा के विषय में सब बातें मालूम हुईं तो उसे देखने की उत्सुकता हुई। एक दिन उसने नन्दगोपा को कुछ स्वर्ण देकर देवगर्भा से मिलने का प्रबंध कर लिया।

इस प्रकार उपसागर और देवगर्भा का गुप्तरूप से मिलन होता रहा परंतु जब देवगर्भा के माता बनने का समय आया तब इस रहस्य को छिपाया न जा सका। कंस और उपकंस ने फिर भी अपनी बहन की हत्या करना उचित न समझा। उन्होंने उपसागर के साथ देवगर्भा का विवाह कर दिया परंतु शर्त यह रखी कि यदि उनकी सन्तान पुत्र होगी तो वे उसका वध अवश्य कर देंगे। हाँ पुत्रियों की प्राणरक्षा की जायगी।

समय आने पर देवगर्भा ने एक कन्या को जन्म दिया। इससे कंस और उपकंस को प्रसन्नता हुई और उन्होंने उसका नाम अंजना रख दिया। अंजना के भरण-पोषण के लिये कंस ने गोवर्द्धमान नामक ग्राम उपसागर को दे दिया। इस प्रकार देवगर्भा अपने पति के साथ गोवर्द्धमान ग्राम में सुख-पूर्वक रहने लगी।

कुछ दिन पश्चात् देवगर्भा को एक पुत्र तथा नंदगोपा को एक कन्या उत्पन्न हुई। पुत्र के प्राणों की रक्षा करने के लिये नंदगोपा की कन्या को स्वयम् लेकर देवगर्भा ने अपना पुत्र उसे दे दिया और कन्या के जन्म की सूचना अपने भाइयों के पास भेजवा दी। कन्या के जन्म की बात सुनकर उसके भाइयों ने कोई बाधा नहीं उपस्थित की। इसी प्रकार देव-

गर्भा के दस पुत्र नंदगोपा के यहाँ पलकर बड़े हुए और उसकी दस कन्याओं का पालन-पोषण देवगर्भा ने किया। देवगर्भा के दस पुत्रों के नाम इस प्रकार रखे गए-१ वासुदेव (कृष्ण), २ बलदेव, ३ चंडदेव, ४ सूर्यदेव, ५ अग्निदेव, ६ वरुणदेव, ७ अर्जुन, ८ पर्जन्य, ९ घृत और १० अकुर। लोक में ये दसों भाई अंधक वेणु के पुत्र के ही नाम से प्रसिद्ध थे।

ये दसों भाई शरीर से अत्यन्त बलवान, क्रूर और क्रोधी थे। बड़े होने पर वे लूटमार करने लगे। कई बार उन्होंने राजा को भेंट में दी जाने वाली वस्तुएँ भी लूट लीं। लोगों ने जाकर कंस से कहा, "महाराज! अन्धकवेणु के बेटे भयंकर उत्पात करते हैं। राज्य सुरक्षित नहीं है।" बार-बार शिकायतें आने पर राजा ने अन्धकवेणु को बुलाकर डराया-धमकाया। प्राणभय से अन्धकवेणु ने दसों पुत्रों विषयक रहस्य का उद्घाटन कर दिया।

इस प्रकार यह जानकर कि उनकी बहन के एक नहीं दस पुत्र जीवित हैं कंस और उपकंस अत्यन्त चिन्तातुर हो उठे। उन्होंने मन्त्रियों से परामर्श के उपरान्त यह निश्चय किया कि राजधानी में एक बहुत बड़ा उत्सव किया जाय जिसमें वीरता और शरीरिक बल सम्बन्धी प्रतियोगिताएँ भी हो और दंगलों में चाणूर, मुष्टिक आदि दरबारी पहलवान उन दसों युवकों को जान से मार डालें। इस प्रकार बदनामी भी न होगी और उन अभिशाप रूप भांजों से पीछा भी छूट जायगा। जब वासुदेव अपने भाइयों और साथियों सहित

राजधानी में आए उस समय लोगों में भय और आतंक छा गया। उन्होंने बाज़ार लूट लिया और अच्छे-अच्छे वस्त्र और आभूषण धारण करके उत्सव स्थलपर आए। इस समय दंगल देखने के लिये उत्सवस्थल में नर-नारियों की अपार भीड़ एकत्र होगई थी। पहली कुश्ती बलदेव और चाणूर की हुई। बलदेव ने संकल्प किया कि वे चाणूर को हाथ से न छुयेंगे। अतः उन्होंने हाथी के आगे से घास उठाकर उसकी एक रस्सी बटली और उसे चाणूर के पेट के आस-पास लपेटकर उसे ऊपर उछाल दिया। चाणूर का भारी शरीर बड़े वेग से पृथ्वी पर गिरा और उसका सिर फट गया। चाणूर की मृत्यु हो जाने पर राजा ने मुष्टिक को अखाड़े में उतारा। मुष्टिक के आते ही बलदेव ने उस पर बड़े वेग से प्रहार किया। पहली पकड़ में ही उसकी दोनो आँखें फूट गईं और वह चिल्ला उठा, "मैं मल्ल नहीं हूँ—मैं मल्ल नहीं हूँ।" बलदेव ने कहा, "मल्ल हो चाहे न हो मेरे लिये तो तू एक बलिपशु मात्र है।" ऐसा कहकर उन्होंने उसे बड़े जोर से पृथ्वी पर पटक दिया जिससे उसकी वहीं मृत्यु होगई। अपने दोनों पहलवानों को इस प्रकार नष्ट होते देखकर राजा बहुत डर गया और उसने सैनिकों को दसों युवकों को पकड़ लेने का आदेश दिया। इसी समय वासुदेव ने अपना चक्र फेंका और कंस और उपकंस के सिर कट कर पृथ्वी पर गिर पड़े। भयभीत जनता ने वासुदेव के चरणों पर गिर कर उनसे रक्षा की प्रार्थना की।

इस प्रकार दसों पुत्रों ने अपने मामाओं को समाप्त करके असितांजना नगर में अपने माता-पिता को पुनः प्रतिष्ठित

किया। इसके पश्चात् वे दसों भाई अयोध्या की ओर बढ़े। उन्होंने अयोध्या के आस-पास के बनों में आग लगादी, नगर की दीवारें तोड़ डालीं और राजा कालसेन को बन्दी करके राज्य पर अधिकार कर लिया।

इस समय द्वारावती नामक नगर धन वैभव में बहुत प्रसिद्ध था। उसके एक ओर पर्वत माला थी और दूसरी ओर समुद्र लहराता था, द्वारावती का नगर जादू से सुरक्षित था। नगर की रक्षा एक गर्दभ करता था जो किसी शत्रु के समीप आने पर जोर से रेंकने लगता था। गर्दभ का शब्द सुनकर नगर ऊपर आकाश में उड़ जाता था और समुद्र के बीचो-बीच स्थित होकर तब तक पुराने स्थान पर नहीं आता था जब तक शत्रु का जरा भी भय रहता था।

वासुदेव ने अपने भाइयों और साथियों के साथ कई बार द्वारावती पर आक्रमण किया परन्तु उसपर अधिकार करना संभव न हो सका।

उस समय द्वारावती के निकट के बन में कृष्ण द्वैपायन नामक एक महात्मा रहते थे। दसों भाइयों ने जाकर उन्हें प्रणाम किया और द्वारावती पर अधिकार करने की बात पूछी। कृष्ण द्वैपायन ने कहा, "नगर के बाहर खाई में जो गधा रहता है उसी के शरण में जाओ वही तुम्हें कोई युक्ति बताएगा।"

दसों भाइयों ने जाकर गर्दभ को प्रणाम किया और उससे प्रार्थना की कि जब वे नगर पर आक्रमण करें उस समय

वह मौन रहे। परन्तु गर्दभ ने कहा, "ऐसा कर सकना मेरे लिये संभव नहीं है। मैं तुम्हें दूसरी तरकीब बताता हूँ। तुम नगर के चारों ओर चार बहुत ऊँचे खंभे खड़े करो और उनके ऊपर मोटे तारों का जाल पूरदो। जब नगर ऊपर उठेगा तो ये तार उसे रोक लेंगे।"

जब गर्दभ की बताई विधि से खभें बन गये और तारों का जाल भी पूर दिया गया उस समय वासुदेव ने अपने साथियों के साथ नगर पर फिर आक्रमण किया। सदा की भाँति गर्दभ रेंका परंतु नगर ऊपर न उड़ सका और वासुदेव ने अपने साथियों सहित द्वारावती पर अधिकार कर लिया। यह नगर उन्हें इतना पसन्द आया कि वे वहीं बस गए। वासुदेव के चक्र का आतंक उस समय सारे भारतवर्ष पर छाया हुआ था। तिरसठ हज़ार राजाओं के मस्तक उसके प्रहार से छिन्न हो चुके थे। अब उन्होंने निश्चय किया कि सारा राज्य दसों भाइयों में बराबर बाँट लिया जाय। विभाग हो जाने पर वासुदेव को अपनी बहन अंजना का ध्यान आया। अंकुर ने कहा, "ग्यारह भाग करने की आवश्यकता नहीं है। मैं अपना भाग बहन को देता हूँ। मैं राज्य नहीं करना चाहता। मेरी रुचि वाणिज्य-व्यापार में अधिक है।"

इस प्रकार राज्य का बटवारा नौ भाइयों और एक बहन में हुआ।

वासुदेव तथा उनके भाइयों के परिवार की वृद्धि भी बहुत अधिक हुई। समय आने पर देवगर्भा और उपसागर ने

शरीर त्याग दिया और वासुदेव भी अपने भाइयों सहित वृद्ध होगए। एक बार वासुदेव के एक पुत्र की मृत्यु होगई जिससे उन्हें इतना दुःख हुआ कि वे सब काम छोड़कर रात दिन शोकमग्न रहने लगे। इन दसों भाइयों में घृत विद्वान और अधिक बुद्धिमान था। इसीलिये लोग उसे घृत पण्डित कहते थे।

एक दिन लोगों ने जाकर वासुदेव को सूचना दी कि घृत पागल होगया है और बाज़ारों में न जाने क्या बकता फिरता है। ऊपर की गाथा में यही बात कही गई है। भाई के पागल-पन की बात सुन वासुदेव दौड़े हुए बाज़ार में आए और घृत को छाती से लगाकर पूछा, "तुम्हें क्या कष्ट है ? तुम्हें क्या चाहिए ?"

घृत ने कहा, 'शशा ! शशा !! शशा !!!'

वासुदेव ने कहा, "हे भाई ! मैं तुम्हारे लिये सोने, चाँदी के, हीरे, मोतियों और रत्नों के खरगोश बनवा सकता हूँ। बोलो, तुम्हें कौनसा शशा चाहिए।"

घृत ने आकाश में चमकते हुए चन्द्रमा की ओर उँगली उठाकर कहा, "वह ! उसके भीतर चमकने वाला ! वही शशा मुझे लादो।"

वासुदेव ने कहा, "प्यारे भाई तुम बुद्धिमान हो। असम्भव की याचना बुद्धिमान नहीं करते। क्या तुम नहीं जानते कि चन्द्रमा के भीतर का शशा पृथ्वी पर नहीं लाया जा सकता।"

घृत पंडित ने तुरंत उत्तर दिया, "भैया आप भी तो बुद्धिमान है। क्या आप यह नहीं जानते कि मरा हुआ पुत्र पुनः जीवित नहीं किया जा सकता। फिर भी आप उसके लिये दुःखित क्यों होते हैं ?"

वासुदेव ने भाई को हृदय से लगा लिया। उस दिन से उन्होंने पुत्र के लिये शोक करना बन्द कर दिया और राज्य का काम पूर्ववत् देखने लगे।

कथा के अंत में तथागत ने कहा, "इस जन्म में सारिपुत्र वासुदेव था और मैं तो घृत पण्डित था ही।"

नोटः—मूल जातक में इसके आगे यादवों के विनाश और कृष्ण की मृत्यु की कथा भी दी है जो प्रायः पुराणों से मिलती जुलती है।

◆◆◆◆◆